पद्मयी हिन्दी में श्रीमद्भगवद्गीता

जुगुल किशोर तिवारी

ॐ

कृष्णम् वंदे जगद्गुरुम्

पदमयी हिंदी

में

श्रीमद्भगवद्गीता

जुगुल किशोर तिवारी

ISBN 978-81-908912-9-5

© Author

Published by **Janki Publication**
For Pt Babulal Dwivedi, Janki Prasad Smriti Sewa Samiti
Lalitpur. Mob. 9838303690
Email. rakeshndwivedi@gmail.com

Shrimad Bhagwad Gita in Hindi Poetry

(Padmayi Hindi Me Shrimad Bhagwad Gita)

By ***Jugul Kishore Tewari***

दो शब्द

*"**कबि न होउं नहिं चतुर कहावउं। मति अनुरूप राम गुन गावउं।**" की तर्ज पर **'आत्मतोषिणी गीता'** गुरु कृपा के परिणामस्वरूप संस्कृत भाषा ज्ञान से अनभिज्ञ भक्तजनों के लिये किया गया मेरा गिलहरी प्रयास है। प्रभु के भक्तों की मांग पर इस पुस्तक के दो संस्करण निकलने के बाद प्रिय अनुज डॉ0 राकेश नारायण द्विवेदी ने इसको सर्वसुलभ बनाने की दृष्टि से निःशुल्क **"ई–बुक"** के रूप में प्रकाशित करने की मात्र इच्छा ही प्रकट नहीं की अपितु इसे कार्यरूप भी प्रदान किया। इसके पूर्व भी उनके द्वारा मूल पुस्तक में त्रुटि सुधार का महती कार्य सम्पन्न किया जा चुका है।*

विश्वास है कि पुस्तक के इस संस्करण से अधिकाधिक गीता प्रेमियों को लाभ प्राप्त होगा। गोविन्द की कृपा आप सब पर सर्वदा बनी रहे, यही प्रार्थना है। जय श्री कृष्ण।

दिनांक – मई 20, 2015

प्रयाग

जुगुल किशोर तिवारी

यत्र योगेश्वरः कृष्णो.....

प्रस्तुत ग्रंथ में गीता की सरस और मानव जीवन की पाथेय वाणी को अत्यंत सरल हिंदी पदों में अनुवाद करके अभिव्यक्त किया गया है। यह ग्रंथ उत्तर प्रदेश में कार्यरत नैष्ठिक कर्मयोगी पुलिस अधिकारी श्री जुगुल किशोर तिवारी ने प्रणीत किया है। रचनाकार मेरे लिए प्रातर्स्मरणीय और पूज्यपाद हैं, जिससे श्रद्धापूर्वक उनका उपनाम लेने में भी मुझे संकोच होता है, किंतु लेखकीय दायित्व का निर्वाह भी तो करना है, अस्तु! आपकी कर्तव्यपरायणता, सामान्य व विशिष्ट सभी जन के प्रति समभाव दृष्टि, वंचित और असहाय के प्रति संवेदना, सद्व्यवहार, समस्त प्रकारी सहयोग और सहकार एवं साधुप्रवृत्ति जनमानस में चर्चा का विषय है। साहित्यिक प्रतिभा के धनी तिवारीजी आध्यात्मिक साधना संपन्न एवं तत्वबोधी हैं। गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञता और लोकसंग्रह के भाव कैसे आपके स्वभाव में सहजता से अनुस्यूत हो गए इसमें सामान्यजन को अचरज ही होता है। कदाचित् इसीलिए आप पर भगवान भूतभावन की महती कृपा कहकर संत–मनीषी सुखानुभूति करते हैं। मेरे ऊपर तो 'भैया' की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरह की कृपा बनी हुई है। प्रत्यक्ष इसलिए कि आज मुझमें यदि किंचिन्मात्र परिष्कार है तो वह पूज्यश्री के दिए मार्गदर्शन के कारण ही है। निरे देहाती परिवेश से ले जाकर उन्होंने अपने साथ मुझे इलाहाबाद रखा और भोजन, वस्त्र, आवास और पुस्तकों सहित पढ़ने लिखने में अपेक्षित सारी आवश्यकताएं पूरी कीं, अन्यथा मेरे लिए प्रयाग का संस्कार और विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करनी असंभव होती और तब दिल्ली में जुटाई जीवटता और आजीविका प्राप्त नहीं हो पाती। ऐसे अनेक अध्यवसायियों के वे उस तरह संबल बने जैसे उनके परिवार वाले भी बहुधा नहीं हुआ करते हैं। वाङ्मय में जैसा कहा गया है प्राकृत (असंस्कारी) जन के गुणगान करने से विद्या की देवी मां सरस्वती सिरधुन कर पछताने लगती हैं, पर 'भैया' जैसे सुकृती और पुण्यात्म के विषय में कहने के लिए तो मेरे पास उपयुक्त शब्द भी नहीं है, मां सरस्वती अब भी पछताती होंगी कि भला इसे यह करना क्यों न आ पाया!

गीता की इस अमर वाणी को जनभाषा में निबद्ध करके सामान्यजन का भारी उपकार हुआ है। पुस्तक के बारे में जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीवासुदेवानंद सरस्वतीजी ने लिखा है– ''भगवान व्यासजी ने गीता को संस्कृत के कई छंदों में लिखा है, परंतु तिवारीजी ने एक ही दोहा छंद का आश्रय लिया है और इसे गेय पद्धति से संगीत में बांधकर इसकी गेयता सिद्ध कर दी है।'' उल्लेखनीय है कि इस पदमयी गीता को आडियो–वीडियो रूप में भी जनसुलभ कराया जा चुका है। रचनाकार के गुरुदेव परमपूज्य श्री बाबूलाल जी द्विवेदी ने कहा है– ''यह दुष्कर कार्य रचनाकार के गीता के पठन, श्रवण, अध्ययन, मनन, अवगाहन के गहनतापूर्वक लेखन का सुपरिणाम है। कृति में अनुभवरस की भावना का संपुटन और दर्शन सुखद आश्चर्यकारी है, जिसके स्पर्श मात्र से परमानंद मूर्तरूप में प्रकट हो जाए।'' संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के राष्ट्रपति पुरस्कृत अभिनव पाणिनि काशी विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष प्रो0 रामयत्न शुक्ल के अभिमत से तिवारीजी की इस पदमयी हिंदी टीका ''के अध्ययन से गीता का रहस्य समझा जा सकता है। गीता रहस्य को समझने के लिए अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ेगा।''

यह गीता काशी में रहकर रची गई है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के वैदिक दर्शन विभागाध्यक्ष प्रोफेसर विंध्येश्वरी प्रसाद मिश्र 'विनय' इसकी प्रासंगिकता के प्रश्न को ध्यान में रखकर कहते हैं– ''जैसे 'रामायन सतकोटि अपारा' होने पर भी गोस्वामी तुलसीदासजी की 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' श्रीरामचरितमानस को भाषा निबंध बनाकर सृजित किया और फिर वह ग्राम्य गिरा में निबद्ध होने पर भगवान विश्वनाथ और परमेश्वरी भवानी की कृपा से 'सुजानों' के 'गान' और 'श्रवण' का विषय बन गई, वैसे ही अपने संतोष के लिए भाषाबद्ध की गई यह गीता कवि किशोर का अभीप्सित तो सिद्ध करेगी ही; गीता प्रेमी अन्य जनों को भावित–अनुभावित करेगी– ऐसा हमारा विश्वास है।''

इस कार्य को 'आत्मतोषिणी गीता' नाम से अब तक दो बड़े संस्करणों में पुस्तक, आडियो–वीडियो सीडी तथा गुटका आदि रूपों में लाया जा चुका है, जिसमें गीता का मूल पाठ, हिंदी पद्यानुवाद और सरलार्थ

भगवान के सुंदर चित्रों सहित दिया गया है, किंतु ध्यातव्य है कि यह प्रकाशन लेखक के लिए धन जुटाने का माध्यम नहीं है, अतः जनसामान्य के सम्मुख परिमार्जित करते हुए अब इसे 'ई–बुक' के रूप में निःशुल्क उपलब्ध कराया जा रहा है, जिसे scribd.com, pothi.com, googlebooks.com इत्यादि सेवाप्रदाताओं के यहां से डाउनलोड किया जा सकता है। गीता के संस्कृत श्लोकों को अंतरराष्ट्रीय गीता सोसायटी द्वारा अनुरोध पर एम एस वर्ड में फांट सहित निःशुल्क उपलब्ध करा दिया गया। उपलब्ध कराई गई गीता देववाणी में इस प्रकार दी गई है कि उसे पढ़ने में कठिनाई नहीं होगी, संस्कृत के पदों को अलग–अलग करते हुए इसमें सरल ढंग से दिया गया है, जो अन्यत्र प्रायः समास रूप में प्राप्त होती है। सोसायटी के उन महानुभाव ने अपना नाम भी नहीं दिया। ऐसे कितने ही निस्पृही साधक अपने आस–पास हैं, जो निष्काम होकर मनोयोग से संस्कृति और समाज के योगक्षेम में प्रयत्नशील हैं। इस गीता के अवगाहन से हमें निश्चित ही ऐसी सद्प्रेरणा प्राप्त होगी, जिनसे व्यक्ति का होना सार्थक होता है, अन्यथा यह भी क्या कि जैसा अकबर इलाहाबादी ने कहा है–

क्या कहें अहबाब (मित्रगण) क्या कारे–नुमायां (बहुत बड़ा काम/कारनामा) कर गए
बीए किया, नौकर हुए, पेंशन मिली, फिर मर गए।

वट सावित्री, संवत् 2072
तदनुसार दिनांकः 20 मई, 2015

राकेश नारायण द्विवेदी
मोबाइल 9236114604

अथ प्रथमोऽध्यायः

अर्जुनविषादयोगः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव, किम् अकुर्वत संजय ।१.१।

धृतराष्ट्र ने कहा–

1. धर्म भूमि कुरुक्षेत्र मे, लिये युद्ध की चाह।
पाण्डुसुतन मम पुत्रगण, कृत्य कियो है काह।।

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं, व्यूढं दुर्योधनस् तदा ।
आचार्यम् उपसंगम्य, राजा वचनम् अब्रवीत् ।१.२।

संजय उवाच–

2. देख पाण्डवन सैन्य की, रचना व्यूहाकार।
द्रोण गुरू के पास जा, दुर्योधन कहा पुकार।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणाम् , आचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण, तव शिष्येण धीमता ।।३।।

3. देखें गुरुवर वाहिनी, धृष्टद्युम्न की चाल।
शिष्यपुत्र है आपका, पाण्डुसुतन का श्याल।।

अत्र शूरा महेष्वासा, भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च, द्रुपदश्च महारथः ।१.४।

4. भीम और अर्जुन सदृश, सूरवीर बलवान।
महारथी हैं सात्यिकी, द्रुपद, विराट महान।।

धृष्टकेतुश् चेकितानः, काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च, शैब्यश्च नरपुङ्गवः ।१.५।

5. धृष्टकेतु चेकितान अरु, पुरुजित काशीराज।
कुन्तिभोज अरु शैव्य हैं, शत्रु पक्ष में आज।।

युधामन्युश्च विक्रान्त, उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च, सर्व एव महारथाः ।१.६।

6. युधामन्यु पराक्रमी, उत्तमौज बलवान।
अभिमन्यू पांचालिसुत, पंच बली धृतिमान।।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते।7।

7. निज पक्ष के प्रमुख जो, सुनिये विप्र महान।
आप रहें अवगत सदा, सेनापति इधर प्रधान।।

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च, कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च, सौमदत्तिस् तथैव च ।१.८।

8. गुरुवर आप पितामह, अश्वत्थामा कर्ण।
कृपाचार्य, भूरिश्रवा और किशोर विकर्ण।।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविता।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।9।

9. अन्य बहुत से शूरजन, तज जीवन की आश।
मेरे हित सब शस्त्र ले, डटे चतुर रण रास।।

अपर्याप्तं तद् अस्माकं, बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदम् एतेषां, बलं भीमाभिरक्षितम् ।१.१०।

10. भीष्म पितामह रक्षित, अजय सैन्य है मोर।
वहां भीम की चौकसी, जीतेंगे कर जोर।।

अयनेषु च सर्वेषु, यथाभागम् अवस्थिताः ।
भीष्मम् एवाभिरक्षन्तु, भवन्तः सर्व एव हि ।१.११।

11. रहें सुरक्षित पितामह, सैन्य रहे सब ओर।
सुदृढ़ मोर्चे युद्ध के, संशय रहित किशोर।।

तस्य संजनयन् हर्षं, कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः, शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।१.१२।

12. शंख बजा तब भीष्म ने, किया हर्ष उत्पन्न।
दुर्योधन गद्–गद् हुआ, दहाड़ सिंह सी सुन।।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च, पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त, स शब्दस् तुमुलोऽभवत् ।१.१३।

13. बजे नगारे शंख तब, ढोलक और मृदंग ।
नरसिंघे का नाद सुन, हुआ क्षेत्र सब दंग।।

ततः श्वेतैर् हयैर् युक्ते, महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव, दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।१.१४।

14. श्वेत अश्वयुत रथ चला, आ पहुंचे गोपेश।
शंख अलौकिक वाद्य का, कीन्हा श्री गणेश।।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो, देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं, भीमकर्मा वृकोदरः ।१.१५।

15. पांचजन्य श्री कृष्ण का, देवदत्त कौन्तेय।
पौण्ड्र शंख है भीम का, महाकर्म उपमेय।।

अनन्तविजयं राजा, कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च, सुघोषमणिपुष्पकौ ।१.१६।

16. अनन्त विजय ले धर्म ने, किया तभी उद्घोष।
मणिपुष्पक सहदेव का, नकुल किशोर सुघोष।।

काश्यश्च परमेष्वासः, शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च, सात्यकिश्चापराजितः ।१.१७।

17. शंखध्वनि सब ओर से, काशी केर नरेश।
धृष्टद्युम्न शिखण्डि भी, अब क्यों रहते शेष।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च, सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः, शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ।१.१८।

18. नृप विराट औ सात्यिकी, राजा द्रुपद समेत।
अभिमन्यू पांचालिसुत, किया तुमुल रण हेत।।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां, हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव, तुमुलो व्यनुनादयन् ।१.१९।

19. हुआ घोष का शोर जो, दहला धरा अकाश।
धृतराष्ट्र के सुतन के, हृदय पड़ा आघात।।

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते, धनुर् उद्यम्य पाण्डवः ।१.२०।

20. देख मोर्चाबद्ध सब, कौरव के सरताज।
कपिध्वज अर्जुन ने कहा, सुनो कृष्ण महाराज।।

हृषीकेशं तदा वाक्यम् इदम् आह महीपते ।
सेनयोर् उभयोर् मध्ये, रथं स्थापय मेऽच्युत ।१.२१।

अर्जुन उवाच–

21. कृपया रथ स्थित करें, दोनों सैन्य मझार।
धार्तराष्ट्र उद्यत हुये,उठा धनुष का भार।।

यावद् एतान् निरीक्षेऽहं, योद्धुकामान् अवस्थितान् ।
कैर् मया सह योद्धव्यम् , अस्मिन् रणसमुद्यमे ।१.२२।

22. रखिये स्थिर रथ प्रभू, युद्व क्षेत्र मे आप।
देखूं मै अति ध्यान से, किनसे होय प्रलाप।।

योत्स्यमानान् अवेक्षेऽहं, य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर् , युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।१.२३।

23. दुर्योधन के हित डटे, जो राजा हैं आय।
देखूंगा मै उन्हें अब, सेना के ढिंग जाय।।

संजय उवाच
एवम् उक्तो हृषीकेशो, गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोर् उभयोर् मध्ये, स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।१.२४।

24. संजय बोले नृपति से, नाथ सुनो धर ध्यान।
कृष्ण चन्द्र ने रथ तुरत, रखा मध्य मैदान।।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् , समवेतान् कुरून् इति ।१.२५।

25. भीष्म द्रोण के सम्मुख, उत्तम रथ ले कृष्ण।
अर्जुन से कहने लगे, देख पृथा के पुत्र।।

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः, पितृन् अथ पितामहान्
आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् , पुत्रान् पौत्रान् सखींस् तथा

26. कुन्ती सुत अर्जुन चकित, देख अपन परिवार।
मातृपक्ष गुरु भ्रातृजन, रिश्ते विविध प्रकार।।

श्वशुरान् सुहृदश्चैव, सेनयोर् उभयोर् अपि ।
तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः, सर्वान् बन्धून् अवस्थितान्

27. दादा परदादा सुजन, पौत्र मित्र सुत ताऊ।
चाचा सुहृद ससुर सब, नहीं शेष है कोऊ।।

कृपया परयाविष्टो, विषीदन्न् इदम् अब्रवीत् ।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण, युयुत्सुं समुपस्थितम् ।१.२८।

28. स्वजन आपने देखकर, सके न मन को रोक।
करुणा से भर पृथासुत, बोले बचन सशोक।।

सीदन्ति मम गात्राणि, मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे, रोमहर्षश्च जायते ।१.२९।

अर्जुन उवाच–

29. अर्जुन बोले कृष्ण से, देख स्वजन परिवार।
अंग शिथिल सूखा बदन, रोमांचित बहुबार।।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् , त्वक् चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्य् अवस्थातुं, भ्रमतीव च मे मनः ।१.३०।

30. सरक रहा गांडीव भी, त्वचा जले अति जोर।
नहीं खड़ा तन हो सके, भ्रमित हुआ मन मोर।।

निमित्तानि च पश्यामि, विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि, हत्वा स्वजनम् आहवे ।१.३१।

31. हे केशव लक्षण सभी, देखूं सब विपरीत।
नहीं दीखता हित मुझे, मारुंगा यदि मीत।।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण, न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द, किं भोगैर् जीवितेन वा ।१.३२।

32. नहीं विजय की कामना, नहीं राज्य की चाह।
भोगें सुख कैसे प्रभू, जहां स्वजन की आह।।

येषाम् अर्थे काङ्क्षितं नो, राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे, प्राणांस् त्यक्त्वा धनानि च ।

33. जिनके हित है कामना, राज्य भोग की मित्र।
वही त्याग जीवन यहां, सन्मुख बात विचित्र।।

आचार्याः पितरः पुत्रास् , तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः, श्यालाः संबन्धिनस् तथा ।१.३४।

34. ताऊ, चाचे, पुत्रगण, देखियत गुरुजन वृन्द।
दादे, मामे, ससुरजन, साले, पौत्र स्वछन्द।।

एतान् न हन्तुम् इच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः किं नु महीकृते ।१.३५।

35. नहीं मारना चाहता, लें भले मार ये आज।
पृथ्वी की तो बात क्या, तीन लोक के राज।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान् नः, का प्रीतिः स्याज् जनार्दन ।
पापम् एवाश्रयेद् अस्मान् , हत्वैतान् आततायिनः ।१.३६।

36. नहीं खुशी होगी हमे, कौरव जन को मार।
इन दुष्टों को मार कर, होगा पाप प्रहार।।

तस्मान् नार्हा वयं हन्तुं, धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा, सुखिनः स्याम माधव ।१.३७।

37. नहीं उचित मधुसूदन, अपने जन की हान।
निज कुटुम्ब के मरण मे,क्या सुख कैसी शान।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं, मित्रद्रोहे च पातकम् ।१.३८।

38. लोभ भ्रष्ट ये स्वजन हैं, नहीं दीखता नाश।
मित्र द्रोह की राह मे, पाप पुंज का वास।।

कथं न ज्ञेयम् अस्माभिः, पापाद् अस्मान् निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं, प्रपश्यद्भिर् जनार्दन ।१.३९।

39. स्वयं विचारें हम यहां,जान दोष परिणाम।
जागरूक होकर अहो, करें पाप के काम।।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम् , अधर्मोऽभिभवत्युत ।१.४०।

40. नष्ट होय कुल धर्म जो, होवे कुल का नाश।
धर्म सनातन भी मिटे, होय पाप का वास।।

अधर्माभिभवात् कृष्ण, प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्णसंकरः ।१.४१।

41. पाप बढ़े से कृष्ण जी, होंय नारियां भ्रष्ट।
भ्रष्टन की सन्तान से, संतति संकर दुष्ट।।

संकरो नरकायैव, कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।१.४२।

42. कुल ले जाते नरक मे, संकर वरन की जाति।
पिण्डोदक, तर्पण रहित पितर सदा बिलखात।।

दोषैर् एतैः कुलघ्नानां, वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः, कुलधर्माश्च शाश्वताः ।१.४३।

43. दोष वर्णसंकर लगे, होत कुलन की घात।
कुल धर्मन की घात से, नष्ट होत है जात।।

उत्सन्नकुलधर्माणां, मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो, भवतीत्यनुशुश्रुम ।१.४४।

44. सुनते आये जो करें, कुल धर्मों का नाश।
करें अनिश्चित काल तक,वे नरकों में वास।।

अहो बत महत् पापं, कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद् राज्यसुखलोभेन, हन्तुं स्वजनम् उद्यताः ।१.४५।

45. बुद्विमान होते हुये, स्वजन हनन तैयार।
राजलोभ सुखभोग हित, पाप कर्म धिक्कार।।

यदि माम् अप्रतीकारम् , अशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस् , तन् मे क्षेमतरं भवेत् ।१.४६।

46. होगा मम कल्याण ही, डालें कुरुजन मार।
अप्रतिकार निःशस्त्र को, समरांगण के द्वार।।

संजय उवाच
एवम् उक्त्वाऽर्जुनः संख्ये, रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं, शोकसंविग्नमानसः ।१.४७।

संजय उवाच–

47. किशोर कहे यों बोलकर, हुआ धनंजय मौन।
धनुष बांण रख स्यंदन, शोक मगन हो जौन।।

"बुद्वि सारथी अरु रथी, आत्मा हैं दो नाम।
सकल सृष्टि कुरुक्षेत्र है, युद्व क्षेत्र निष्काम।।
गीता प्रथमोध्याय में,यह विषाद का योग।
अपने सुखहित लिख गया,कैसा सुखद संजोग।1।"

अथ द्वितीयोऽध्यायः

२. सांख्ययोगः

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टम् , अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तम् इदं वाक्यम् , उवाच मधुसूदनः ।२.१।

संजय उवाच –

1. शोकमग्न अर्जुन लख्यो, बहत नयन जलधार।
मधुसूदन कहने लगे, मत त्यागो हथियार।।

श्रीभगवानुवाच
कुतस्त्वा कश्मलम् इदं, विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टम् अस्वर्ग्यम् , अकीर्तिकरम् अर्जुन ।२.२।

श्रीभगवान उवाच –

2. मोह हुआ किस हेतु से, अर्जुन असमय आय।
स्वर्ग कीर्ति का शत्रु जो, कृष्ण कहा समझाय।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ, नैतत् त्वय्य् उपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं, त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।२.३।

3. नहीं उचित नरहीनता, तुमको सुन प्रिय पार्थ।
उठो युद्व हित वीर तुम, हिय दुर्बलता त्याग।।

अर्जुन उवाच
कथं भीष्मम् अहं संख्ये, द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि, पूजार्हाव् अरिसूदन ।२.४।

अर्जुन उवाच –

4. पूजनीय है पितामह, वंदनीय गुरु द्रोण।
कैसे मारुं बांण मैं, समरांगण कर होण।।

गुरून् अहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यम् अपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस् तु गुरून् इहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।२.५।

5. मांग भीख खांऊ यदी, लोक मध्य श्रुतिसेतु।
तब भी नहिं मारुं इन्हें,अर्थ काम के हेतु।।

न चैतद् विद्मः कतरन् नो गरीयो
यद् वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यान् एव हत्वा न जिजीविषामस्
तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।२.६।

6. इन्हें मारकर किस तरह, भोग सकूं मै भोग।
जुगल श्रेष्ठ जन के वधे, नहीं बनेगा लोक।।
युद्ध करुं या न करुं,विजय होय या हार।
कर प्रहार कैसे जिऊं,अपने परिजन मार।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान् निश्चितं ब्रूहि तन् मे
शिष्यस् तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।२.७।

7. कायरतावश मूढ़चित, शिष्य शरण नत जान।
करना क्या मुझको उचित, शिक्षा दें भगवान।।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकम् उच्छोषणम् इन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमाव् असपत्नम् ऋद्धं
राज्यं सुराणाम् अपि चाधिपत्यम् ।२.८।

8. निष्कंटक पृथ्वी मिले, स्वर्ग राज्य मिल जाय।
देवराज का पद मिले, कैसे शोक नशाय।।

संजय उवाच
एवम् उक्त्वा हृषीकेशं, गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दम् , उक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।२.९।

संजय उवाच –
9. हृषीकेश नहिं लडूंगा, कहकर इतनी बात।
निद्राजित चुप हो गये,सुनो परन्तप तात।।

तम् उवाच हृषीकेशः, प्रहसन् इव भारत ।
सेनयोर् उभयोर् मध्ये, विषीदन्तम् इदं वचः ।२.१०।

10. हंसकर के श्रीकृष्ण ने, कहे पार्थ से बैन।
शोकमग्न जो हो रहा,आज मध्य दोउ सैन।।

श्रीभगवानुवाच
अशोच्यान् अन्वशोचस् त्वं, प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासून् अगतासूंश्च, नानुशोचन्ति पण्डिताः ।२.११।

श्री भगवान उवाच –
11. कृष्ण कहत भे पार्थ से,नहीं शोक करणीय।
जीवित हैं जो जगत में अथवा जो मरणीय।।

न त्वेवाहं जातु नासं, न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः, सर्वे वयम् अतः परम् ।२.१२।

12. नहीं समय ऐसा कभी, जहं न हों हम आप।
अथवा ये राजा नहीं, आंगे यही प्रताप।।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे, कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर् , धीरस् तत्र न मुह्यति ।२.१३।

13. जैसे आये बालपन, युवा अवस्था वीर।
मृत्यु,बुढ़ापा पायकर, ब्यथित न होते धीर।।

मात्रास्पर्शास् तु कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास् , तांस् तितिक्षस्व भारत ।२.१४।

14. हे भारत तू सहन कर, सुख–दुःख का जंजाल।
सर्दी, गर्मी चक्रवत, इन्द्रिय विषय विशाल।।

यं हि न व्यथयन्त्येते, पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं, सोऽमृतत्वाय कल्पते ।२.१५।

15. मोक्ष योग्य वह नर सुनो,सुख,दुःख जिसे समान।
इन्द्रिय विषय न सालते, सुनो धीर धर ध्यान।।

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोर् अपि दृष्टोऽन्तस् , त्व् अनयोस् तत्त्वदर्शिभिः ।२.१६

16. सत शाश्वत है सर्वदा, असत् कभी भी नाह।
तत्व जानते विज्ञजन, इन दोनों के माह।।

अविनाशि तु तद् विद्धि, येन सर्वम् इदं ततम् ।
विनाशम् अव्ययस्यास्य, न कश्चित् कर्तुम् अर्हति ।२.१७।

17. जिससे सब जग व्याप्त है, नाश रहित है जान।
उस अविनाशी तत्व को, मार सके न आन।।

अन्तवन्त इमे देहा, नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य, तस्माद् युध्यस्व भारत ।२.१८।

18. तनु नश्वर पर आत्मा, अविनाशी यह जान।
उठकर भारत युद्धकर, रखकर इसका ध्यान।।

य एनं वेत्ति हन्तारं, यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो, नायं हन्ति न हन्यते ।२.१९।

19. मरी जो समझे आत्मा, अथवा मारन योग्य।
दोनों नहि कछु जानते,मरे न मारे कोय।।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।२.२०।

20. न जन्मे न मरण हो, किसी काल में आय।
नित्य अजन्मा शाश्वत, भले देह मर जाय।।

वेदाविनाशिनं नित्यं, य एनम् अजम् अव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ, कं घातयति हन्ति कम् ।२.२१।

21. कौन किसे है मारता, कौन किसे मरवाय।
अविनाशी अव्यय सदा, नित्य अजन्मा आय।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य्
अन्यानि संयाति नवानि देही ।२.२२।

22. नर पहने नव वस्त्र को,फटा पुराना त्याग।
वैसे ही जीवात्मा, नये शरीरहिं लाग।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ।२.२३।

23. शस्त्रों से नहिं कट सके, आग न सके जलाय।
जल न गीला कर सके, हवा न सके सुखाय।।

अच्छेद्योऽयम् अदाह्योऽयम् , अक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर् , अचलोऽयं सनातनः ।२.२४।

24. जले, गले, सूखे नहीं, है अछेद्य अरु नित्य।
सर्व व्याप्त, सनातन, अविचल, स्थिर सत्य।।

अव्यक्तोऽयम् अचिन्त्योऽयम् , अविकार्योऽयम् उच्यते ।
तस्माद् एवं विदित्वैनं, नानुशोचितुम् अर्हसि ।२.२५।

25. है अव्यक्त, अचिन्त्य अरु, आत्मा रहित विकार।
भलीभांति यह जानकर, अपना शोक निवार।।

अथ चैनं नित्यजातं, नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो, नैवं शोचितुम् अर्हसि ।२.२६।

26. यदि तू माने आत्मा, सदा जनम मरणीय।
महाबाहु तब भी सुनो, नहीं शोक करणीय।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर् , ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्माद् अपरिहार्येऽर्थे, न त्वं शोचितुम् अर्हसि ।२.२७।

27. जनम हुये की मौत है, मरे हुये का जन्म।
नहीं उपाय कुछ और है, मत हो शोक निमग्न।।

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव, तत्र का परिदेवना ।२.२८

28. जीव जन्म से पूर्व थे, रहें मृत्यु के बाद।
मध्य काल मे प्रकट हैं, तजो ब्यर्थ अवसाद।।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिद् एनम्
आश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनम् अन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।२.२९।

29. आत्मा को आश्चर्यवत्, लखते कहते विज्ञ।
अधिकारी सुन जानते, क्या जानें अनभिज्ञ।।

देही नित्यम् अवध्योऽयं, देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि, न त्वं शोचितुम् अर्हसि ।२.३०।

30. सभी देह मे आत्मा, है अवध्य यह जान।
नहीं उचित है शोक सो, हे भारत मतिमान।।

स्वधर्मम् अपि चावेक्ष्य, न विकम्पितुम् अर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् , क्षत्रियस्य न विद्यते ।२.३१।

31. धर्म आपनो देखकर, योग्य नहीं भय पार्थ।
धर्म युद्ध से नहिं बड़ा, क्षत्रिय को परमार्थ।।

यदृच्छया चोपपन्नं, स्वर्गद्वारम् अपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्धम् ईदृशम् ।२.३२।

32. स्वतः प्राप्त यह स्वर्ग का, द्वार युद्ध के रूप।
भाग्यवान को ही मिले, अनुपम मार्ग अनूप।।

अथ चेत् त्वम् इमं धर्म्यं, संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च, हित्वा पापम् अवाप्स्यसि ।२.३३।

33. नहीं करे जो धर्म रण, सुन अर्जुन धर ध्यान।
कीर्ति, स्वधर्म नशाय पुनि, होवे पाप महान।।

अकीर्तिं चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर् , मरणाद् अतिरिच्यते ।२.३४।

34. क्षात्र धर्म छोंड़ा अगर, कीर्ति न रहे जहान।
माननीय नर के लिये, अपयश मरण समान।।

भयाद् रणाद् उपरतं, मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम् ।२.३५।

35. सम्मानित तू था बहुत, जिनके लिये सुभाग।
वही भयातुर जान तुहिं,रण से जनिहैं भाग।।

अवाच्यवादांश्च बहून् , वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस् तव सामर्थ्यं, ततो दुःखतरं नु किम् ।२.३६।

36. निन्दा करें समर्थ की,जो वैरी जग कोय।
दुःख न एहि सम आन कछु, जो काहू का होय।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्माद् उत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः ।२.३७।

37. यदी मरा तू युद्ध मे, स्वर्ग मिलेगा जान।
जीते तो भूपति बने, उठकर युद्ध प्रयान।।

सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं पापम् अवाप्स्यसि ।२.३८।

38. सुखदुःख को सम मानकर, लाभ हानि जय हार।
नहीं पाप हो युद्ध मे, कह किशोर सत् बार।।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये, बुद्धिर् योगे त्व् इमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ, कर्मबन्धं प्रहास्यसि ।२.३९।

39. कहा गया यह मर्म सब, ज्ञान योग के लाग।
कर्म योग का मर्म अब, सुनो पार्थ भय त्याग।।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पम् अप्य् अस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्

40. नहीं नाश हो बीज का,फल का दोषहु नाह।
मृत्यु रूप भय से बचे, कर्म धर्म मग मांह।।

व्यवसायात्मिका बुद्धिर् , एकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्य् अनन्ताश्च, बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।२.४१।

41. एक बुद्वि ही कर्म की, निश्चय कारक जान।
बहुभेदी मति होत है, अस्थिर मति अज्ञान।।

याम् इमां पुष्पितां वाचं, प्रवदन्त्य् अविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ, नान्यद् अस्तीति वादिनः ।२.४२।

42. कर्म फलन के लालची, वेद वाक्य मे प्रीत।
शोभायुत वाणी कहें, अविवेकी जन मीत।।

कामात्मानः स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां, भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।२.४३।

43. कर्म भोग फल के लिये, देत कर्म फल जन्म।
बहुविध क्रिया बखानती, उनकी वांणी मर्म।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां, तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः, समाधौ न विधीयते ।२.४४।

44. हरण चित्त जिनका किया, ऐसी वाणी जान।
निश्चित मति प्रभु पर नहीं, यश लोलुप इन्सान।।

त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योगक्षेम आत्मवान् ।२.४५।

45. तीन गुणों से वेद युत, त्रिगुण रहित तुम पार्थ।
हर्षशोक से रहित मन, योग क्षेम का स्वार्थ।।

यावानर्थ उदपाने, सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः ।२.४६।

46. ब्रह्म तत्व जो जानते, वेदन के प्रति भाव।
भरे जलाशय पाय ज्यों, क्या कर छुद्र तलाव।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर् भूर् , मा ते सङ्गोऽस्त्व् अकर्मणि ।२.४७।

47. कर्मन मे अधिकार तव, फल मे कभी न पार्थ।
फल की इच्छा मत करो,निरासक्त तज स्वार्थ।।

योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा, समत्वं योग उच्यते ।२.४८।

48. निरासक्त रह वीर तुम, सिद्वि असिद्वि समान।
करने योग्य सुकर्म कर, योग भाव सम जान।।

दूरेण ह्यवरं कर्म, बुद्धियोगाद् धनंजय ।
बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ, कृपणाः फलहेतवः ।२.४९।

49. सम बुद्वि के दृष्टिगत, सकाम कर्म अति न्यून।
शरण बुद्वि की पार्थ गह, फल हित बन क्यों दीन।।

बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद् योगाय युज्यस्व, योगः कर्मसु कौशलम् ।२.५०।

50. मुक्त होय समबुद्वि नर, पाप पुण्य को त्याग।
यही कुशलता कर्म की, बन्ध मोक्ष का मार्ग।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि, फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदं गच्छन्त्य् अनामयम् ।२.५१।

51. समबुद्धी से युक्त नर,कर्म फलों को छोड़।
जन्म बन्ध से मुक्त हो, पावे पद बेजोड़।।

यदा ते मोहकलिलं, बुद्धिर् व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं, श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।२.५२।

52. अर्जुन तेरी बुद्धि जब, महामोह कर पार।
लोक अलौकिक भोग सब, हो जावें बेकार।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते, यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस् , तदा योगम् अवाप्स्यसि ।२.५३।

53. भॉति–भांति के बचन सुन, हुयी मती तव चंग।
अविचल योग समाधि गह, विहर ब्रह्म के संग।।

अर्जुन उवाच
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत, किम् आसीत व्रजेत किम् ।२.५४।

अर्जुन उवाच –

54. केशव स्थिर बुद्धि का, लक्षण करें प्रकाश।
बोले, बैठे, चले किम, कैसे होय अभास।।

श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान् , सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येव् आत्मना तुष्टः, स्थितप्रज्ञस् तदोच्यते ।२.५५।

श्री भगवानुवाच–
55. मनोकामना त्याग नर, स्थिर पूर्ण प्रकार।
सच्चा स्थित प्रज्ञ वह, आत्म तुष्ट संसार।।

दुःखेष्व् अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीर् मुनिर् उच्यते ।२.५६।

56. दुःख में ना उद्विग्न हो,सुख से न हो राग।
नष्ट,राग अरु क्रोध, भय, स्थिर बुद्धि सुभाग।।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस् , तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।२.५७।

57. वस्तु शुभाशुभ प्राप्त कर, नहिं प्रसन्न नहिं खिन्न।
स्थिर बुद्धि सुभाग वह, राग द्वेष से भिन्न।।

यदा संहरते चायं, कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् , तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।२.५८।

58. जैसे कछुआ अंग निज, लेत समेट छिपाय।
वैसे स्थिर मति रहे, इन्द्रिय विषय विहाय।।

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य, परं दृष्ट्वा निवर्तते ।२.५९।

59. विषयों से भी दूर रह, नहिं आसक्ति मिटाय।
स्थिर मति प्रभु मिलन से, राग मुक्त हो जाय।।

यततो ह्यपि कौन्तेय, पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्ति प्रसभं मनः ।२.६०।

60. हे अर्जुन आसक्ति यदि, रह जाये कुछ शेष।
बुद्धि हरण कर इन्द्रियां, मन को देतीं क्लेश।।

तानि सर्वाणि संयम्य, युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।२.६१।

61. उन सब को निजवश करो, रखो चित्त मोहि पाह।
इन्द्रियवश मे होय तो, स्थिर मति हो जाय।।

ध्यायतो विषयान् पुंसः, सङ्गस् तेषूपजायते ।
सङ्गात् संजायते कामः, कामात् क्रोधोऽभिजायते
क्रोधाद् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।२.६२-६३।

62–63. विषयों के चिन्तन करे, काम बढ़े मन बीच।
विघ्न काम मे देखकर, उपज क्रोध अति नीच।।
क्रोध मूढ़ता जब बढ़े, स्मृति भ्रम हो जाय।
स्मृति भ्रम से बुद्धि हत, तेहिते सर्व नशाय।।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु, विषयान् इन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर् विधेयात्मा, प्रसादम् अधिगच्छति ।२.६४।

64. निज बस करके इन्द्रियां, भोग करे इन्सान।
रागद्वेष से दूर रह, हो प्रसन्न जिय जान।।

प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिर् अस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।२.६५।

65. निर्मल और प्रसन्न मन, करे दुःखों का नाश।
स्थिर होती मति तुरत, मुक्त होत सब पाश।।

नास्ति बुद्धिर् अयुक्तस्य, न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिर् , अशान्तस्य कुतः सुखम् ।२.६६।

66. इन्द्रिय, मन जीते बिना, शुद्ध न बनते भाव।
फिर कैसे बिन भाव के, शान्ति और सुख पाव।।

इन्द्रियाणां हि चरतां, यन् मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां, वायुर् नावम् इवाम्भसि ।२.६७।

67. जैसे जल बिच नाव को, हरण करे ज्यों वात।
तैसे मन को इन्द्रियां, बुद्वि सहित हर जात।।

तस्माद् यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् , तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।२.६८।

68. निज बस जिसकी इन्द्रियां, रहें सुनो कौन्तेय।
स्थिर मति उसकी रहे, कह किशोर अज्ञेय।।

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।२.६९।

69. सोते जिसमे सकल नर, करे जागरण धीर।
जाग्रत रहता संयमी, स्थितप्रज्ञ गंभीर।।

आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठं
समुद्रम् आपः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिम् आप्नोति न कामकामी ।२.७०।

70. सागर में जिस तरह नद, समा जात बिन चाल।
वैसे स्थिर मति रहे, भोग शान्ति सब काल।।

विहाय कामान् यः सर्वान् , पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः, स शान्तिम् अधिगच्छति ।२.७१।

71. छोंड़ सभी नर कामना, अहंकार कर त्याग।
शान्ति प्राप्त करते वही, जुगुल सहित अनुराग।।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्याम् अन्तकालेऽपि, ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति

72. ब्रह्म मिलन के गुण यही, सुनो पार्थ धर ध्यान।
अन्तकाल योगी लहें,पावन गति निर्वाण।।

" इस द्वितीय अध्याय में, सांख्ययोग शुभ धाम।
पार्थ सहित श्री कृष्ण जय, करत किशोर प्रणाम"।।2।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

३. कर्मयोगः

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत् कर्मणस् ते, मता बुद्धिर् जनार्दन ।
तत् किं कर्मणि घोरे मां, नियोजयसि केशव ।३.१।

अर्जुन उवाच –

1. ज्ञान श्रेष्ठ यदि कर्म से, केशव कहते आज।
करें भयंकर कर्म क्यों,समझ न आये राज।।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तद् एकं वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽहम् आप्नुयाम् ।३.२।

2. मिश्रित वचनों से प्रभो, बुद्धि मोह गतिरोध।
जिसमे मम कल्याण हो, कहें एक मत सोध।।

श्रीभगवानुवाच
लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा, पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां, कर्मयोगेन योगिनाम् ।३.३।

3. पहले ही निष्पाप सुन, मार्ग कहे मैं दोय।
एक कर्म अरु ज्ञान दो, जानत है सब कोय।।

न कर्मणाम् अनारम्भान् , नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनाद् एव, सिद्धिं समधिगच्छति ।३.४।

4. नहीं मिले निष्कामता, कर्म किये बिन पार्थ।
अथवा केवल त्याग से, मिले न ज्ञान यथार्थ।।

न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्य् अकर्मकृत् ।
कार्यते ह्य् अवशः कर्म, सर्वः प्रकृतिजैर् गुणैः ।३.५।

5. नहीं एक क्षण रुक सके, नर बिन कर्म किशोर।
होके वश निज प्रकृति के, करे कर्म बरजोर।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा, मिथ्याचारः स उच्यते ।३.६।

6. हठ कर रोके इन्द्रियां, विषय सोच मनमाह।
मूढ़मती, मिथ्या पुरुष, कहलाते नरनाह।।

यस् त्व् इन्द्रियाणि मनसा, नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगम् , असक्तः स विशिष्यते ।३.७।

7. मन से वश कर इन्द्रियां,अनासक्त कर कर्म।
श्रेष्ठ वही नर है सुनो, कह किशोर यह मर्म।।

नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्य् अकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्धयेद् अकर्मणः ।३.८।

8. अकर्मण्य से श्रेष्ठ है,शास्त्र नियत कर कर्म।
नहिं निर्वाह शरीर का, बिना कर्म यह मर्म।।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय, मुक्तसङ्गः समाचर ।३.९।

9. यज्ञ कर्म शुभ होत हैं, शेष बन्ध के हेतु।
निरासक्त हो कर्म कर, हे अर्जुन नरकेतु।।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वम् , एष वोऽस्त्व् इष्टकामधुक्

10. आदि कल्प में प्रजापति, रचे प्रजा अरु याग।
वृद्धि प्राप्त हो यज्ञ से, तेहि फल इच्छित लाभ।।

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परम् अवाप्स्यथ ।३.११।

11. करो पुष्ट सब देव को, यज्ञ भाग से आप।
उन्नति देंगे वे तुरत, बिना स्वार्थ निष्पाप।।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर् दत्तान् अप्रदायैभ्यो, यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।३.१२।

12. यज्ञ पुष्ट हो देवगण, इष्ट भोग सब देय।
खाते बिन उनके दिये, चोर सुनो कौन्तेय।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो, मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्व् अघं पापा, ये पचन्त्यात्मकारणात् ।३.१३।

13. यज्ञ शेष भोजन किये, पाप मुक्त नर श्रेष्ठ।
निज शरीर हित अन्न को, खाते पाप निकृष्ट।।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्याद् अन्नसंभवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।३.१४।

14. प्रांणी उपजे अन्न से, अन्न वृष्टि से मित्र।
वृष्टि यज्ञ से होत है, सो यज्ञ कर्म है इष्ट।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि, ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म, नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।३.१५।

15. कर्म की उत्पति वेद से, वेद की ईश्वर माह।
ब्रह्म सर्व व्यापत रमत, यज्ञ माहिं पहचान।।

एवं प्रवर्तितं चक्रं, नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुर् इन्द्रियारामो, मोघं पार्थ स जीवति ।३.१६।

16. सृष्टि चक्र यों जान के, नहीं आचरहिं जोय।
ऐसे भोगी पापमय, व्यर्थहिं पैदा होय।।

यस् त्वात्मरतिर् एव स्याद् , आत्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस् , तस्य कार्यं न विद्यते ।३.१७।

17. रमण करे निज आत्म में, तृप्त रहे मन माह।
कह किशोर उनके लिये,नही कर्म कोई आह।।

नैव तस्य कृतेनार्थो, नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु, कश्चिद् अर्थव्यपाश्रयः ।३.१८।

18. नहीं प्रयोजन है उसे, अकर्म, कर्म के साथ।
सकल जीव का साथ भी, उसका है निःस्वार्थ।।

तस्माद् असक्तः सततं, कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म, परम् आप्नोति पूरुषः ।३.१९।

19. करने लायक कर्म कर, छोंड़ स्वार्थ का हेतु।
वे पाते परमात्मा, निरासक्त नरकेतु।।

कर्मणैव हि संसिद्धिम् , आस्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि, संपश्यन् कर्तुम् अर्हसि ।३.२०।

20. निरासक्त निजकर्म कर, भए सिद्ध जनकादि।
देख लोकसंग्रह करो, त्यागो हृदय विषाद।।

यद् यद् आचरति श्रेष्ठस् , तत् तद् एवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते, लोकस् तद् अनुवर्तते ।३.२१।

21. श्रेष्ठ पुरुष का आचरण, बनता है आदर्श।
करें अनुकरण सब वही, होता लोक विमर्श।।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं, त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तम् अवाप्तव्यं, वर्त एव च कर्मणि ।३.२२।

22. तीन लोक में पार्थ सुन, मुझे न कुछ कर्तव्य।
फिर भी करता कर्म मैं, बिना चाह प्राप्तव्य।।

यदि ह्यहं न वर्तेयं, जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।३.२३।

23. उचित कर्म यदि न करूं, हानि बड़ी कौन्तेय।
मेरे मग पर ही चलें, मानव लखि सब कोय।।

उत्सीदेयुर् इमे लोका, न कुर्यां कर्म चेद् अहम्।
संकरस्य च कर्ता स्याम् , उपहन्याम् इमाः प्रजाः ।३.२४।

24. यदि कर्म मैं न करूं, नष्ट,भ्रष्ट हों लोग।
संकरता पैदा करुं, ध्वंस प्रजा संजोग।।

सक्ताः कर्मण्य् अविद्वांसो, यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद् विद्वांस् तथासक्तश् , चिकीर्षुर् लोकसंग्रहम्

25. अज्ञानी आसक्त हो, कर्म करे ज्यों पार्थ।
निरासक्त विद्वान त्यों, करता लोक हितार्थ।।

न बुद्धिभेदं जनयेद् , अज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत् सर्वकर्माणि, विद्वान् युक्तः समाचरन् ।३.२६।

26. ज्ञानी नर न हो कभी, क्रियाहीन अज्ञान।
सबहि कर्म मे रत रखे, यह ही शास्त्र विधान।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि, गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा, कर्ताहम् इति मन्यते ।३.२७।

27. कर्म सभी हों प्रकृतिवश, जाने गुणी सुजान।
मैं कर्ता हूं मोहवश, कहे सो मूढ़ महान।।

तत्त्ववित् तु महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त, इति मत्वा न सज्जते ।३.२८।

28. भाग समझ गुण कर्म के, नर तत्वज्ञ सुजान।
गुण ही गुण मे कार्यरत, निरासक्त मतिमान।।

प्रकृतेर् गुणसंमूढाः, सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तान् अकृत्स्नविदो मन्दान् , कृत्स्नविन् न विचालयेत् ।३.२९

29. प्रकृति गुणों से मूढ़ नर, लिप्त रहे गुण कर्म।
नहिं विचलित वे होत हैं, जो जाने यह मर्म।।

मयि सर्वाणि कर्माणि, संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर् निर्ममो भूत्वा, युध्यस्व विगतज्वरः ।३.३०।

30. मुझमे अपर्ण कर्म कर, आशा–ममता त्याग।
तज मन चिंता युद्ध कर, मुझमें चित्त सुलाग।।

ये मे मतम् इदं नित्यम् , अनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो, मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ।३.३१।

31. दोषदृष्टि से रहित नर, श्रद्धा–युत मत मोर।
करें अनुसरण कर्म के, बंध न पड़ें किशोर।।

ये त्वेतद् अभ्यसूयन्तो, नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस् तान् , विद्धि नष्टान् अचेतसः ।३.३२।

32. मुझे दोष दें नहिं चलें, मेरे मत अनुसार।
सभी ज्ञान से हीन वे, नष्ट होंय बहुबार।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः, प्रकृतेर् ज्ञानवान् अपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि, निग्रहः किं करिष्यति ।३.३३।

33. सभी करत हैं कर्म को,निज स्वभाव वश पार्थ।
ज्ञानी भी करते यही, फिर क्या हठ या स्वार्थ।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे, रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर् न वशम् आगच्छेत् , तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।३.३४।

34. हर इन्द्रिय के मध्य में, राग–द्वेष का वास।
ये ही निज कल्याण का, करते जुगुल विनाश।।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः, परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः ।३.३५।

35. भयदायी पर धर्म है, उत्तम कर्म स्वधर्म।
मरण श्रेष्ठ निज धर्म में, यह स्वधर्म का मर्म।।

अर्जुन उवाच
अथ केन प्रयुक्तोऽयं, पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्न् अपि वार्ष्णेय, बलाद् इव नियोजितः ।३.३६।

अर्जुन उवाच –
36. किसकी पाकर प्रेरणा, नर करता है पाप।
नहीं चाहते हुये भी, परवश हो या आप।।

श्रीभगवानुवाच
काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनम् इह वैरिणम् ।३.३७।

श्री भगवान उवाच –
37. रज गुण से उत्पन्न जो, काम क्रोध की खान।
भोगी, पेटू, पापमय, यह ही रिपु बलवान।।

धूमेनाव्रियते वह्निर् , यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस् , तथा तेनेदम् आवृतम् ।३.३८।

38. धूम्र ढके जिमि अग्नि को, दर्पण मैल तमाम।
जेर ढंके ज्यों गर्भ को, त्यों विवेक को काम।।

आवृतं ज्ञानम् एतेन, ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय, दुष्पूरेणानलेन च ।३.३९।

39. भस्म करे सब वस्तुएं, फिर भी अग्नि अतृप्त।
ज्ञानी जन का शत्रु तस, काम न होता तृप्त।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिर् , अस्याधिष्ठानम् उच्यते ।
एतैर् विमोहयत्य् एष, ज्ञानम् आवृत्य देहिनम् ।३.४०।

40. इन्द्रिय, मन अरु बुद्धि मे, करता है यह वास।
इनसे ही नर मोह कर, करे ज्ञान का नाश।।

तस्मात् त्वम् इन्द्रियाण्यादौ, नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं, ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।३.४१।

41. वश में करके इंद्रियां, कामहिं डालो मार।
हन्ता ज्ञान विज्ञान का, कर आपन उद्धार।।

इन्द्रियाणि पराण्याहुर् , इन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस् तु परा बुद्धिर् , यो बुद्धेः परतस् तु सः ।३.४२।

42. तन से इन्द्रिय श्रेष्ठ कम, मन से बुद्धी श्रेष्ठ।
आत्म सूक्ष्म अरु श्रेष्ठतम, बुद्धी से परमेष्ट।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा, संस्तभ्यात्मानम् आत्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो, कामरूपं दुरासदम् ।३.४३।

43. आत्म–तत्व गह बुद्धि से, मन के जीत विकार।
कामरूप इस शत्रु को, महाबाहु दे मार।।

"तन में कामायुध नही, मन मति इन्द्रियातीत।
वश में रख निज कार्य कर, जुगुल जगत को जीत।
दृष्टा बनकर ही लखे, प्रकृति जन्य सब दृश्य।
कर्मयोग की युक्ति से, बने रहो अस्पृश्य।3।'

अथ चतुर्थोऽध्यायः

४. ज्ञानकर्मसंन्यासयोगः

श्रीभगवानुवाच
इमं विवस्वते योगं, प्रोक्तवान् अहम्अव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह, मनुर् इक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥४.१।

श्री भगवान उवाच –

1. यह अविनाशी योग मै, कहा सूर्य सन जाय।
सूर्य पुत्र मनु से कहा, मनु इक्ष्वाकु बुझाय।।

एवं परम्पराप्राप्तम् , इमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता, योगो नष्टः परंतप ॥४.२।

2. राज ऋषी जाने इसे, परम्परा से पाय।
लुप्त हुआ बहुकाल महि, पुरायोग जो आय।।

स एवायं मया तेऽद्य, योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति, रहस्यं ह्येतद् उत्तमम् ॥४.३।

3. वही पुरातन योग मै, तुम से कहा सुनाय।
गुप्त और उत्तम रहस, मित्र कहा समुझाय।।

अर्जुन उवाच
अपरं भवतो जन्म, परं जन्म विवस्वतः ।
कथम् एतद् विजानीयां, त्वम् आदौ प्रोक्तवान् इति

अर्जुन उवाच –

4. जन्म आपका नव प्रभू, सूर्य पुरातन आय।
कैसे मानूं तुम कहा, आदि कल्प मे जाय।।

श्रीभगवानुवाच
बहूनि मे व्यतीतानि, जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि, न त्वं वेत्थ परंतप ॥४.५।

श्री भगवान उवाच –

5. बहुत जन्म बीते सुनो, मेरे तेरे मित्र।
मैं जानूं न तुम उन्हें, समझो बात विचित्र।।

अजोऽपि सन्न् अव्ययात्मा, भूतानाम् ईश्वरोऽपि सन्
प्रकृतिं स्वाम् अधिष्ठाय, संभवाम्यात्ममायया ।४.६।

6. अव्यय अजन्मा भूतपति, सबका मै भगवान।
वश करके निज प्रकृति को, प्रकट होत मै जान।।

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर् भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ।४.७।

7. होत धर्म की हानि जब, बढ़े अधर्म जहान।
तब तब मैं होता प्रकट, भारत सुन धर ध्यान।।

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे ।४.८।

8. साधु पुरुष उद्धार हित, दुर्जन नाशन हेतु।
धर्म थापना के लिये, प्रकट होउं नरकेतु।।

जन्म कर्म च मे दिव्यम् , एवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म, नैति माम् एति सोऽर्जुन ।४.९।

9. जन्म कर्म मम दिव्य हैं, जो यह जान सुजान।
देह त्याग पाते मुझे, वह तत्वज्ञ महान।।

वीतरागभयक्रोधा, मन्मया माम् उपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा, पूता मद्भावम् आगताः ।४.१०।

10. वीत राग भय क्रोध अरु, मुझमें भाव अनन्य।
ज्ञान रूप तप से हुये, वे पवित्र नर धन्य।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस् तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।४.११।

11. भजते जो जिस भाव से, मुझे पार्थ मम भक्त।
मैं भी वैसे ही भजूं, जो मुझमें अनुरक्त।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं, यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके, सिद्धिर् भवति कर्मजा ।४.१२।

12. देवों की पूजा करें, रखे कर्मफल चाह।
सिद्धी मिलती है तुरत, सो उनको नरनाह।।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं, गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारम् अपि मां, विद्ध्य् अकर्तारम् अव्ययम् ।४.१३।

13. चार वर्ण मैंने रचे, गुण कर्म रख ध्यान।
कर्ता भी हूं सृष्टि का, किंतु अकर्ता जान।।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति, न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति, कर्मभिर् न स बध्यते ।४.१४।

14. नहीं चाह फल की मुझे, लिप्त न करते कर्म।
कर्म बन्ध में नहिं बंधें, जो यह जानें मर्म।।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म, पूर्वैर् अपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं, पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।४.१५।

15. मोक्ष हेतु पहले सुनो, करे पूर्वज कर्म।
वही करो जो सब किया, यह ही तेरा धर्म।।

किं कर्म किम् अकर्मेति, कवयोऽप्य् अत्र मोहिताः ।
तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि, यज् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्

16. अकर्म कर्म के भेद में, बुद्विमान नर मोह।
होय मुक्त तू अशुभ से, सो समझाऊं तोह।।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं, बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं, गहना कर्मणो गतिः ।४.१७।

17. कर्म, अकर्म, विकर्म को, भलीभांति लो जान।
होत कर्म की गहन गति, जुगुल लेहु पहिचान।।

कर्मण्य् अकर्म यः पश्येद् , अकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्विमान् मनुष्येषु, स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।४.१८।

18. जो देखे कर्म अकर्म में, अकर्म कर्म के मध्य।
बुद्धिमान योगी पुरुष, सकल कर्म का विज्ञय।।

यस्य सर्वे समारम्भाः, कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं, तम् आहुः पण्डितं बुधाः ।४.१९।

19. रहित काम संकल्प नर, कर्म करे श्रुतिमान।
होंय भस्म ज्ञानाग्नि में, सो पण्डित बुध जान।।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं, नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्य् अभिप्रवृत्तोऽपि, नैव किंचित् करोति सः

20. त्याग कर्म फल कामना, जग आश्रय से दूर।
करत कर्म नहिं कुछ करे, आत्मरमण रस पूर।।

निराशीर् यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म, कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम् ।४.२१।

21. जिसका मन अरु आत्मा, त्याग आश अरु भोग।
केवल कर्म शरीर से, बिना पाप फल योग।।

यदृच्छालाभसंतुष्टो, द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धाव् असिद्धौ च, कृत्वापि न निबध्यते ।४.२२।

22. स्वतः प्राप्त संतुष्ट जो, द्वेष ईर्ष्या त्याग।
दूर द्वन्द्व समभाव नर, कर्मबन्ध नहिं लाग।।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म, समग्रं प्रविलीयते ।४.२३।

23. तजे अहम् ममता जुगुल,चित्त प्रभू में लीन।
यज्ञ हेतु रत कर्म जो, उसके कर्म विलीन।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर् , ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं, ब्रह्मकर्मसमाधिना ।४.२४।

24. अर्पण हवि सब ब्रह्म है, कर्ता अगिन भी ब्रह्म।
कर्ता होता ब्रह्म है, योगी फल परब्रह्म।।

दैवम् एवापरे यज्ञं, योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नाव् अपरे यज्ञं, यज्ञेनैवोपजुह्वति ।४.२५।

25. सुर पूजा हित योगिजन, याज्ञिक करें विधान।
कुछ करते ब्रह्माग्नि लखि, आतम योग महान।।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्य् अन्ये, संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन् विषयान् अन्ये, इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।४.२६।

26. श्रोतादिक तनु इन्द्रियां, संयम अग्नि प्रवीन।
कछु शब्दादिक विषय हवि, इन्द्रियाग्नि में लीन।।

27. इन्द्रिय तन,मन, प्रांण में, हवन करत अनयास।
संयम की इस अग्नि से, होता ज्ञान प्रकाश।।

द्रव्ययज्ञास् तपोयज्ञा, योगयज्ञास् तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च, यतयः संशितव्रताः ।४.२८।

28. द्रव्य यज्ञ तप योग कछु, करें ज्ञान का यज्ञ।
यत्नशील, योगी, यती, स्वाध्यायी नर विज्ञ।।

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः ।४.२९।

29. प्रांण अपान में हवन कर, कुछ अपान हुत प्रांण।
प्राणायामी को निरख, करते पाप प्रयाण।।

अपरे नियताहाराः, प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो, यज्ञक्षपितकल्मषाः ।४.३०।

30. कुछ सीमित आहार ले, गति प्राणों की रोक।
कल्मष करते दूर सब, कह किशोर बेटोक।।

यज्ञशिष्टामृतभुजो, यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्य् अयज्ञस्य, कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।४.३१।

31. यज्ञशेष भोजन करें, सुधरे इह पर लोक।
यज्ञहीन को सुख कहां, पग पग मिलता शोक।।

एवं बहुविधा यज्ञा, विंतता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् , एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे

32. और बहुत से यज्ञ भी, कहे वेद मे गुन।
उन्हें कर्मकृत जानकर, मोक्ष मार्ग तू चुन।।

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज् , ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ, ज्ञाने परिसमाप्यते ।४.३३।

33. ज्ञान यज्ञ है श्रेष्ठ अति, द्रव्य यज्ञ से पार्थ।
सब समाप्त हो ज्ञान मे, जितने भी हों स्वार्थ।।

तद् विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस् तत्त्वदर्शिनः ।४.३४।

34. समझो उनसे ज्ञान को, जिन्हें तत्व का ज्ञान।
कपट छोंड़ कर दण्डवत, बन जिज्ञासु प्रमान।।

यज् ज्ञात्वा न पुनर् मोहम् , एवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्य् अशेषेण, द्रक्ष्यस्य् आत्मन्य् अथो मयि ।४.३५।

35. जिसे जान मोहे नहीं, पेख सकल जग सृष्टि।
ब्रह्म सच्चिदानन्दमय, मुझे देख दृढ़ दृष्टि।।

अपि चेद् असि पापेभ्यः, सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव, वृजिनं संतरिष्यसि ।४.३६।

36. सभी पापियों से अधिक, यदि तू पापी पार्थ।
तरे ज्ञान की नाव से, भलीभांति भय त्याग।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर् , भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा ।४.३७।

37. सब ईंधन को जस सुनो, देती आग जलाय।
वैसे ज्ञान की अग्नि से, कर्म भस्म हो जाय।।

न हि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रम् इह विद्यते ।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः, कालेनात्मनि विन्दति ।४.३८।

38. नहिं कुछ इस संसार मे, ज्ञान से अधिक पवित्र।
कर्मयोग से चित्त को, शुद्व करो हे मित्र।।

श्रद्धावाँल् लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम् , अचिरेणाधिगच्छति ।४.३९।

39. ज्ञान मिले विश्वास रख, तेहि से इन्द्रिय राज।
मिले शान्ति प्रभु मिलन की, तत्क्षण तुमको आज।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः ।४.४०।

40. श्रद्वा ज्ञान विहीन जो, कैसे हों वे मुक्त।
लोक और परलोक सुख, वंचित संशययुक्त।।

योगसंन्यस्तकर्माणं, ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय ।४.४१।

41. कर्मयोग करते हुये, करो समर्पण कर्म।
कर्मबन्ध मिट जाय सब, यही धर्म का मर्म।।

तस्माद् अज्ञानसंभूतं, हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगम् , आतिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।४.४२।

42. उर संशय अज्ञान के, काट ज्ञान तलवार।
मन में ला समभाव को, युद्व को हो तैयार।।

"ज्ञान कर्म संन्यास का, योग चतुर्थाध्याय।
कह किशोर अति प्रेम से,नमः पार्थ कृष्णाय।।
भ्रमवश जब रथ को रथी, मैं हूं लेता मान।
योगनिष्ठ संघर्ष ही, मिटा सके अज्ञान।4।"

अथ पञ्चमोऽध्यायः

५. कर्मसंन्यासयोगः

अर्जुन उवाच
संन्यासं कर्मणां कृष्ण, पुनर् योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोर् एकं, तन् मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।५.१।

1. कर्मयोग संन्यास प्रभु, दोनों कहते ठीक।
निश्चित एक बताइये, जो किशोर को नीक।।

श्रीभगवानुवाच
संन्यासः कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकराव् उभौ ।
तयोस् तु कर्मसंन्यासात् , कर्मयोगो विशिष्यते ।५.२।

2. दोनों ही कल्याणकर, कर्मयोग संन्यास।
श्रेष्ठ कर्म संन्यास से, साधन सहज प्रयास।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी, यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं बन्धात् प्रमुच्यते ।५.३।

3. संन्यासी तेहि जानिये, राग द्वेष से दूर।
मुक्त होत जगपाश से, हो सुख से भरपूर।।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः, प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकम् अप्य् आस्थितः सम्यग् , उभयोर् विन्दते फलम् ।५.४।

4. अज्ञ कहें फल पृथक दें, कर्म और संन्यास।
विज्ञ कहें प्रभु प्राप्ति हित, दोनों सुगम प्रयास।।

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं, तद् योगैर् अपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च, यः पश्यति स पश्यति ।५.५।

5. सांख्य योग अरु कर्म मह,दोनों के फल एक।
ज्ञान, कर्म समरूप जो, देखे दृष्टा नेक।।

संन्यासस् तु महाबाहो, दुःखम् आप्तुम् अयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर् ब्रह्म, नचिरेणाधिगच्छति ।५.६।

6. कर्मयोग बिन कठिन है, कर्तापन का नाश।
ज्ञान कर्म को एक कर, पहुंचे प्रभु के पास।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्न् अपि न लिप्यते ।५.७।

7. रहे जितेन्द्रिय भाव से, अन्तःकरण पवित्र।
प्राणिमात्र परमात्म लख, कर्मयोग यह मित्र।।

नैव किंचित् करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन् , अश्नन्गच्छन्स्वपञ् श्वसन्
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्न् , उन्मिषन् निमिषन्न् अपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन् ।५.८-९।

8.9. लखे, सुने, सूंघे, छुये, बोले, करे प्रलाप।
खाय, पिये, सोये, जगे, होता अपने आप।।
है इन्द्रिय व्यापार यह, नहिं करता कुछ कर्म।
ज्ञानी जानें तत्व यह, सांख्ययोग का मर्म।।

ब्रह्मण्य् आधाय कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः
लिप्यते न स पापेन, पद्मपत्रम् इवाम्भसा ।५.१०।

10. ब्रह्म हेतु सब कर्मपन, मान करे जग वास।
पाप पंक से दूर हो, सदृश कमल जलरास।।

कायेन मनसा बुद्धया, केवलैर् इन्द्रियैर् अपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति, सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।५.११।

11. इन्द्रिय,मन अरु मती से, ममता तन परिहार्य।
योगीजन करते सदा, आत्मशुद्धि हित कार्य।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा, शान्तिम् आप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण, फले सक्तो निबध्यते ।५.१२।

12. योगी पावे ईश को, त्याग कर्म परिणाम।
बंधते फल की चाह में, कहत किशोर सकाम।।

सर्वकर्माणि मनसा, संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही, नैव कुर्वन् न कारयन् ।५.१३।

13. बस कर अन्तर आत्मा, सुखी देह नवद्वार।
मन से तज के कर्म को, पाते सदचित् सार।।

न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं, स्वभावस् तु प्रवर्तते ।५.१४।

14. कर्ता, कर्म या कर्मफल, योग रचे नहिं ईश।
सब स्वभाववश होत है, कह किशोर धर शीश।।

नादत्ते कस्यचित् पापं, न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।५.१५।

15. ईश न लेते किसी का, कभी पुण्य या पाप।
मान लेत अज्ञान से, मोहित अपने आप।।

ज्ञानेन तु तद् अज्ञानं, येषां नाशितम् आत्मनः ।
तेषाम् आदित्यवज् ज्ञानं, प्रकाशयति तत् परम् ।५.१६।

16. तत्वज्ञान से जब मिटे, यह अज्ञान स्वच्छंद।
ज्ञान सूर्य की ज्योति में, देख सच्चिदानंद।।

तद्बुद्धयस् तदात्मानस् , तन्निष्ठास् तत्परायणाः ।
गच्छन्त्य् अपुनरावृत्तिं, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।५.१७।

17. ब्रह्मनिष्ठ युत ज्ञान जो, मन बुद्धी तद्रूप।
प्राप्त परमपद अघ रहित, पुनि न परे भवकूप।।

विद्याविनयसंपन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः ।५.१८।

18. श्वपच श्वान द्विज हस्ति, गो, जो लख एक समान।
समदर्शी, पण्डित वही, है विनयी विद्वान।।

इहैव तैर् जितः सर्गो, येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म, तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।५.१९।

19. मन रख के समभाव में, जीत लिया संसार।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, नित सम भाव मझार।।

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य, नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिर् असंमूढो, ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।५.२०।

20. प्रिय को पा न हर्षित, अप्रिय पा नहिं खेद।
संशय रहित सो ब्रह्म वित, स्थिर मति कह वेद।।

बाह्यस्पर्शेष्व् असक्तात्मा, विन्दत्यात्मनि यत् सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम् अक्षयम् अश्नुते ।५.२१।

21. बाह्य विषय आसक्ति नहिं, अन्तर ध्यानानन्द।
ब्रह्म योग अनुभव करत, सो अक्षय आनन्द।।

ये हि संस्पर्शजा भोगा, दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय, न तेषु रमते बुधः ।५.२२।

22. विषयेन्द्रिय संयोग जिमि, सुख भाषहि नरकेतु।
आदि अन्त दुःख देत वह, बुध न रमहिं तेहि हेतु।।

शक्नोतीहैव यः सोढुं, प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं, स युक्तः स सुखी नरः ।५.२३।

23. काम, क्रोध के वेग को, करे जो सहन समर्थ।
है किशोर योगी सुखी, सत जीवन का अर्थ।।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस् , तथान्तर् ज्योतिर् एव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं, ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।५.२४।

24. अंतःसुख, अंतःरमण, आत्म ज्योति से आप्त।
ब्रह्मभूत योगी पुरुष, करें शान्ति को प्राप्त।।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणम् , ऋषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः, सर्वभूतहिते रताः ।५.२५।

25. अघ, संशय से हीन रह ,परहित रत प्रभु ध्यान।
ज्ञानी ब्रह्म स्वरुप ते, पावहिं पद निर्वाण।।

कामक्रोधवियुक्तानां, यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं, वर्तते विदितात्मनाम् ।५.२६।

26. काम क्रोध से रहित जो, पारब्रह्म में चित्त।
उन्हें शान्ति निर्वाण सुख, सभी ओर है नित्त।।

स्पर्शान् कृत्वा बहिर् बाह्यांश् , चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ।५.२७।

27. त्याग विषय का चिन्तन, दृष्टि आंख दोऊ मध्य।
सम कर प्रांण अपान को, चलत नासिका मध्य।।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर् , मुनिर् मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो, यः सदा मुक्त एव सः ।५.२८।

28. बुद्धि और मन इन्द्रियां, जिसने लीन्हीं जीत।
इच्छा भय अरु क्रोधगत, नर न रहहिं भयभीत।।

भोक्तारं यज्ञतपसां, सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां, ज्ञात्वा मां शान्तिम् ऋच्छति ।५.२९।

29. ईश्वर हूँ मैं भोक्ता, जप, तप, यज्ञ महान।
स्वार्थ रहित प्रेमी, सुहृद, लहे शान्ति इन्सान।।

" कर्म और संन्यास का, योग पंचमोध्याय।
योगी,सन्यासी जुगुल,ॐ नमः कृष्णाय।।

इन्द्रियां करती कर्म सब, योगी गत आसक्ति।
संन्यासी, योगी वही, लहहि ब्रह्म अनुरक्ति।5।"

अथ षष्ठोऽध्यायः

६. आत्मसंयमयोगः

श्रीभगवानुवाच
अनाश्रितः कर्मफलं, कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च, न निरग्निर् न चाक्रियः ।६.१।

1. कर्म त्याग योगी नही, जस निराग्नि सन्यास।
उचित कर्म करता रहे, बिना किये फल आस।

यं संन्यासम् इति प्राहुर् , योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्य् असंन्यस्तसंकल्पो, योगी भवति कश्चन ।६.२।

2. जिसे कहें संन्यास है, वही योग कौन्तेय।
बिना त्याग संकल्प के, कोई न योगी गेय।।

आरुरुक्षोर् मुनेर् योगं, कर्म कारणम् उच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव, शमः कारणम् उच्यते ।६.३।

3. योग सिद्धि जो मुनि चहें, तिनके साधन कर्म।
सिद्धि प्राप्त जन के लिए, निष्काम कर्म ही धर्म।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु, न कर्मस्व् अनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी, योगारूढस् तदोच्यते ।६.४।

4. नहि इन्द्रिय के भोग में, नही कर्म आसक्त।
संकल्पों का त्याग कर, है वह योगी भक्त।।

उद्धरेद् आत्मनात्मानं, नात्मानम् अवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुर् , आत्मैव रिपुर् आत्मनः ।६.५।

5. करे आत्म उद्धार जग, गति नहि नीची पार्थ।
नर अपना ही शत्रु है, अपना मित्र यथार्थ।।

बन्धुर् आत्मात्मनस् तस्य, येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस् तु शत्रुत्वे, वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६.६।

6. मन , इन्द्रिय अरु देह को, जीत मित्र हो आर्य।
जो इनके वश रहत है, सो कर दुश्मन कार्य।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य, परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा मानापमानयोः ।६.७।

7. शीत उष्ण,सुख दुख तथा, मान और अपमान।
अन्तः करण प्रवृत्ति सम, सो नर ब्रह्मनिधान।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।६.८।

8. ज्ञान और विज्ञान से, तृप्त जितेन्द्रिय आप्त।
मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण सम, योगी भगवत्प्राप्त।।

सुहृन्मित्रार्युदासीन-मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्व् अपि च पापेषु, समबुद्धिर् विशिष्यते ।६.९।

9. बिना स्वार्थ रिपु मित्र में, जिनके हैं समभाव।
श्रेष्ठ, द्वेष बिन, अघरहित, वे नर श्रेष्ठ स्वभाव।।

योगी युञ्जीत सततम् , आत्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा, निराशीर् अपरिग्रहः ।६.१०।

10. तन, मन इन्द्रिय वश रखे, संग्रह आशाहीन।
वह योगी एकान्तप्रिय, आतम में लवलीन।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम् आसनम् आत्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं, चैलाजिनकुशोत्तरम् ।६.११।

11. कुश मृगछाला वस्त्र रख, शुद्ध भूमि में पार्थ।
आसन ऊँच न नीच सम, जो हो योग हितार्थ।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् , योगमात्मविशुद्धये ।६.१२।

12. तेहि आसन में बैठकर, मन इन्द्रिय कर बद्ध।
करे योग अभ्यास हित, हो अन्तर्मन शुद्ध।।

समं कायशिरोग्रीवं, धारयन्न् अचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं, दिशश्चानवलोकयन् ।६.१३।

13. काया, शिर अरु ग्रीव को, रख समान गतिहीन।
दृष्टि नासिका अग्र रख, देखे ब्रह्म प्रवीन।।

प्रशान्तात्मा विगतभीर् , ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो, युक्त आसीत मत्परः ।६.१४।

14. ब्रह्मचर्य रत, निर्भय, अन्तःकरण सु–शान्त।
योगी मन को रोक ले, मुझमें चित नितान्त।।

युञ्जन् एवं सदात्मानं, योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां, मत्संस्थाम् अधिगच्छति ।६.१५।

15. परमानन्द की थाह को, पाता जोगी भूप।
मन वश करके आत्म से, लख परमात्मस्वरूप।।

नात्यश्नतस् तु योगोऽस्ति, न चैकान्तम् अनश्नतः
न चाति स्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन ।६.१६।

16. निराहार आहार बहु, सदा जाग या सोय।
वे होते योगी नहीं, अर्जुन सिद्धि न होय।।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा ।६.१७।

17. यथायोग आहार अरु, यथायोग व्यवहार।
जाग्रत सुप्त सुचेष्ट सम, योग सिद्धि आधार।।

यदा विनियतं चित्तम् , आत्मन्य् एवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो, युक्त इत्य् उच्यते तदा ।६.१८।

18. अपना चित् परमात्म में, योगी जब कर लेत।
योगयुक्त अरु निस्पृही, पुरुष उन्हें कह देत।।

यथा दीपो निवातस्थो, नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य, युञ्जतो योगम् आत्मनः ।६.१९।

19. दीपक जस निर्वात में, चपल न होता पार्थ।
वैसे ही प्रभु ध्यान में, योगी चित्त यथार्थ।।

यत्रोपरमते चित्तं, निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं, पश्यन्न् आत्मनि तुष्यति ।६.२०।

20. योगाभ्यासी रुद्ध चित, ज्यों ही हो उपराम।
कर ईश्वर का दरस वह, तुष्ट होय निष्काम।।

सुखम् आत्यन्तिकं यत् तद् , बुद्धिग्राह्यम् अतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं, स्थितश् चलति तत्त्वतः ।६.२१।

21. अनुभव कर आनन्द का, बुद्धि इन्द्रियातीत।
लखि योगी परमात्म को, अविचल गत भवभीत।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं, मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन, गुरुणापि विचाल्यते ।६.२२।

22. परम–आत्मा प्राप्ति सम, लाभ न दूसर कोय।
ऐसे नर को दुख ग्रसे, तदपि न विचलित होय।।

तं विद्याद् दुःखसंयोग-वियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो, योगोऽनिर्विण्णचेतसा ।६.२३।

23. दुःख रूप संयोग से, रहित योग को जान।
रहता योगी जगत में, धीर निश्चयी मान।।

संकल्पप्रभवान् कामांस् , त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं, विनियम्य समन्ततः ।६.२४।

24. मनः कामना, वासना, पहले कर निःशेष।
फिर इन्द्रिय समुदाय को, मन से रोक विशेष।।

शनैः शनैर् उपरमेद् , बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा, न किंचिद् अपि चिन्तयेत् ।६.२५।

25. धीरे–धीरे उपरि मन, का कर ले अभ्यास।
बुद्धि और मन ले चलो, परमईश के पास।।

यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलम् अस्थिरम् ।
ततस् ततो नियम्यैतद् , आत्मन्येव वशं नयेत् ।६.२६।

26. मन, शब्दादिक विषय संग, विचर रहा संसार।
चंचल मति अस्थिर हटा, प्रभु की ओर निहार।।

प्रशान्तमनसं ह्येनं, योगिनं सुखम् उत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं, ब्रह्मभूतम् अकल्मषम् ।६.२७।

27. शान्त चित्त निष्पाप अरु, शान्त रजोगुण वीर।
ऐसे प्रभु से एक रह, पावे आनंद धीर।।

युञ्जन्न् एवं सदात्मानं, योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम् , अत्यन्तं सुखम् अश्नुते ।६.२८।

28. पाप रहित योगी करत, अनुभव ब्रह्मानन्द।
आत्मरमण नित प्राप्त कर, जो अनंत आनन्द।।

सर्वभूतस्थम् आत्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शनः ।६.२९।

29. सब जन अपनी आत्मा, सब में निज पहचान।
समदर्शी योगी लखे, जगत आत्म निज जान।।

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति ।६.३०।

30. सब में मुझको देखते, सब देखें मो पांहि।
तिन कहुं नहीं अदृश्य मै, वे अदृश्य मोहि नांहि।।

सर्वभूतस्थितं यो मां, भजत्य् एकत्वम् आस्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, स योगी मयि वर्तते ।६.३१।

31. आत्मरूप मानें सभी, प्राणिमात्र संसार।
ब्रह्मरूप होकर करे, सकल जगत व्यापार।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं, स योगी परमो मतः ।६.३२।

32. योगी अपने सदृश ही, सबको देखे जौन।
सुख–दुख में समभाव रह, परम श्रेष्ठ है तौन।।

अर्जुन उवाच
योऽयं योगस् त्वया प्रोक्तः, साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि, चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्
चञ्चलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोर् इव सुदुष्करम् ।६.३३-३४।

33. मधुसूदन जो तुम कहा, योग रहे समभाव।
मन को चंचल देख के, अस्थिर दिखे स्वभाव।।

34. मन चंचल दृढ़ बली पुनि, मथे महा बलवान।
जैसे वायू नहिं बंधे, त्यों नहिं सधे सुजान।।

श्रीभगवानुवाच
असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ।६.३५।
असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुम् उपायतः ।६.३६।

श्री भगवान उवाच–

35. मन चंचल दुर–निग्रही, निश्चय ही सुन पार्थ।
अभ्यासी वैराग्य से, पाते थाह यथार्थ।।

36. जिसका मन नहिं वश रहे, योग ताह दुष्प्राप्य।
पर जो वश कर यत्न से, ताह सहज संभाव्य।।

अर्जुन उवाच
अयतिः श्रद्धयोपेतो, योगाच् चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं, कां गतिं कृष्ण गच्छति ।६.३७।

अर्जुन उवाच–

37. श्रद्धा राखे योग मह, पर संयम से हीन।
सिद्धि न पाते तो प्रभु, उन्हें कौन गतिदीन।।

कच्चिन् नोभयविभ्रष्टश् , छिन्नाभ्रम् इव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो, विमूढो ब्रह्मणः पथि ।६.३८।

38. मोह देव पथ प्राप्ति में, बिना सहारा तात।
मेघ बिना अवलम्ब ज्यों, नष्ट भ्रष्ट हो जात।।

एतन् मे संशयं कृष्ण, छेत्तुम् अर्हस्य् अशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य, छेत्ता न ह्य् उपपद्यते ।६.३९।

39. संशय मेटो नाथ मम, दुर्गति होय न तात।
संशय नाशक आपके, सिवा न और दिखात।।

श्रीभगवानुवाच
पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाशस् तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् , दुर्गतिं तात गच्छति ।६.४०।

श्री भगवान उवाच–

40. आत्मोद्धारक भक्त की, कुगति न होती पार्थ।
लोक और परलोक में, रहता सदा यथार्थ।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् , उषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे, योगभ्रष्टोऽभिजायते ।६.४१।

41. योग भ्रष्ट तजि देह निज, लहै स्वर्गफल मित्र।
समय पाय जन्मे सुघर, कुल को करे पवित्र।।

अथवा योगिनाम् एव, कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं, लोके जन्म यद् ईदृशम् ।६.४२।

42. वैरागी नर जनम ले, योगी के घर जाय।
अति दुर्लभ यह जन्म है, विरला कोई पाय।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं, लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः, संसिद्धौ कुरुनन्दन ।६.४३।

43. वहां सहज ही प्राप्त कर, पूर्व जन्म के योग।
फिर करते दृढ़ साधना, परमसिद्धि हित लोग।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव, ह्रियते ह्य् अवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुर् अपि योगस्य, शब्दब्रह्मातिवर्तते ।६.४४।

44. उत्तम कुल में जन्म अरु, पाकर पूर्वाभ्यास।
शब्द ब्रह्म, समबुद्धि बल, मिले सुफल अनयास।।

प्रयत्नाद् यतमानस् तु, योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस् , ततो याति परां गतिम् ।६.४५।

45. जनम, जनम करता रहे, योगी अगर प्रयत्न।
सिद्धि प्राप्त करता रहे, सुगति मिले बिन यत्न।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश् चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन ।६.४६।

46. तपसी, ज्ञानी कर्म से, श्रेष्ठ है योगी जान।
अर्जुन इससे तुम चुनो, योग मार्ग पहचान।।

योगिनाम् अपि सर्वेषां, मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां, स मे युक्ततमो मतः ।६.४७।

47. नित्य, निरन्तर, आत्मरत, श्रद्धायुत धीमान।
परम श्रेष्ठ योगी जुगुल, वही मान्य पहिचान।।

"आत्म संयमी योग पढ़ि, यह छठवॉ अध्याय।
चित्त शुद्ध बन संयमी, आत्म ब्रह्म मिल जाय।6।'

अथ सप्तमोऽध्यायः

७. ज्ञानविज्ञानयोगः

श्रीभगवानुवाच

मय्य् आसक्तमनाः पार्थ, योगं युञ्जन् मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां, यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।७.१।

1. मुझ मे मन रख गह शरण, योग युक्त रह पार्थ।
जेहि विधि जानोगे मुझे, वह सब कहूँ यथार्थ।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानम् , इदं वक्ष्याम्य् अशेषतः ।
यज् ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज् , ज्ञातव्यम् अवशिष्यते

2. तुमको यह विज्ञान मैं, कहूँ ज्ञान के साथ।
जिसे जानकर फिर यहॉ, न रहता कुछ पार्थ।।

मनुष्याणां सहस्रेषु, कश्चिद् यतति सिद्धये ।
यतताम् अपि सिद्धानां, कश्चिन् मां वेत्ति तत्त्वतः ।७.३।

3. सहस नरन के मध्य मे, कोउ इक करे प्रयास।
मुझको करता प्राप्त है, तिनमें नर कोई खास।।

भूमिर् आपोऽनलो वायुः, खं मनो बुद्धिर् एव च ।
अहंकार इतीयं मे, भिन्ना प्रकृतिर् अष्टधा ।७.४।
अपरेयम् इतस् त्व् अन्यां, प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो, ययेदं धार्यते जगत् ।७.५।

4. भूमि, अग्नि, जल, वायु, खं, मन, मति, अहं विकार।
आठ प्रकृति मेरी पृथक, कह किशोर शतबार।।

5. प्रकृति आठ ये निम्नतर, दूसर श्रेष्ठ महान।
जीव रुप जो जग धरे, सुन किशोर धर ध्यान।।
एतद्योनीनि भूतानि, सर्वाणीत्य् उपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः, प्रभवः प्रलयस् तथा ।७.६।

6. इन दोनों से ऊपजें, सकल भूत लो जान।
कारण भी ये जगत के, नाश इन्हें ही मान।।

मत्तः परतरं नान्यत् , किंचिद् अस्ति धनंजय ।
मयि सर्वम् इदं प्रोतं, सूत्रे मणिगणा इव ।७.७।

7. नहीं श्रेष्ठ मुझसे यहां, कुछ भी अर्जुन जान।
सकल जगत मणिवत गुथा, मध्य सूत मोहिं मान।।

रसोऽहम् अप्सु कौन्तेय, प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेष, शब्दः खे पौरुषं नृषु ।७.८।

8. जल मे रस शशि, सूर्य में ज्योति जथा कौन्तेय।
ऊँ वेद,खं, शब्द पुनि, त्यों नर पुरुष प्रमेय।।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च, तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु, तपश् चास्मि तपस्विषु ।७.९।

9. गन्ध भूमि अरु अगनि में, तेज यथा विद्यमान।
सकल प्रांणि मे जीव हूं, तप तपसी त्यों मान।।

बीजं मां सर्वभूतानां, विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर् बुद्धिमताम् अस्मि, तेजस् तेजस्विनाम् अहम्

10. सकल प्रांणि का बीज मैं, सदा सनातन जान।
बुद्धिमान की बुद्धि मैं, तेजस तेज प्रमाण।।

बलं बलवतां चाहं, कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु, कामोऽस्मि भरतर्षभ ।७.११।

11. मैं बल हूँ बलवान का, मोह कामना हीन।
धर्मशास्त्र अनुकूल हूं, मैं ही काम प्रवीन।।

ये चैव सात्त्विका भावा, राजसास् तामसाश्च ये
मत्त एवेति तान् विद्धि, न त्व् अहं तेषु ते मयि ।७.१२।

12. मुझमें ही उत्पन्न हों, सत, रज, तम के भाव।
वे मुझमे मैं नहिं वहां, यह सब मोर प्रभाव।।

त्रिभिर् गुणमयैर् भावैर् , एभिः सर्वम् इदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति, माम् एभ्यः परम् अव्ययम् ।७.१३।

13. तीन गुणों के कारण, प्रांणी मोहित होंय।
इनके बुरे प्रभाव से, मुझे न जानहि कोय।।

दैवी ह्य् एषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया ।
माम् एव ये प्रपद्यन्ते, मायाम् एतां तरन्ति ते ।७.१४।

14. माया त्रिगुण अलौकिक, नहीं थाह आसान।
मम आश्रय ले सहज ही, पार करे इनसान।।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः, प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना, आसुरं भावम् आश्रिताः ।७.१५।

15. अज्ञानी,माया विकृत, असुर भाव धर नीच।
मुझे न जानहिं नहिं भजें, रहे कुकर्मन बीच।।

चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुर् अर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ ।७.१६।

16. अर्थार्थी, जिज्ञासु अरु ज्ञानी जन पुनि आर्त।
चारों चार प्रकार से, मुझको भजते तात ।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त, एकभक्तिर् विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थम् , अहं स च मम प्रियः ।७.१७।

17. इनमें ज्ञानी श्रेष्ठ सुन, मम भक्ती चित देत।
मैं प्रिय ताको वह मुझे, कह किशोर यह हेत।।

उदाराः सर्व एवैते, ज्ञानी त्व् आत्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा, माम् एवानुत्तमां गतिम्

18. यद्यपि सभी उदार पर, ज्ञानी मेरा रूप।
मुझमें जो चित ले रहे, आश्रय परम अनूप।।

बहूनां जन्मनाम् अन्ते, ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वम् इति, स महात्मा सुदुर्लभः ।७.१९।

19. बहुत जन्म के बाद जो,मुझे मान सर्वस्व।
दुर्लभ ज्ञानी ताहि लख, वासुदेव मय विश्व।।

कामैस् तैस्तैर् हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियमम् आस्थाय, प्रकृत्या नियताः स्वया ।

20. भोग कामना जब हरे, नर का ज्ञान स्वभाव।
अन्य देव देवी भजें, उनका मान प्रभाव।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः, श्रद्धयार्चितुम् इच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां, ताम् एव विदधाम्य् अहम्।७.२१।

21. जो जन जिस जिस भाव से, भजन करे जेहि लाग।
करता श्रद्धा मैं अचल, देवरूप अनुराग।।

स तया श्रद्धया युक्तस् , तस्याराधनम् ईहते ।
लभते च ततः कामान् , मयैव विहितान् हि तान् ।७.२२।

22. करें भजन अति राग से, मांगे जो वरदान।
करता पूरन मैं सुनो, उनसे ही वे दान।।

अन्तवत् तु फलं तेषां, तद् भवत्य् अल्पमेधसाम् ।
देवान् देवयजो यान्ति, मद्भक्ता यान्ति माम् अपि ।७.२३।

23. छुद्र बुद्धि जन केर फल,होत क्षणिक लो जान।
पूज देव लें स्वर्ग को, भक्त मोर स्थान।।

अव्यक्तं व्यक्तिम् आपन्नं, मन्यन्ते माम् अबुद्धयः ।
परं भावम् अजानन्तो, ममाव्ययम् अनुत्तमम् ।७.२४।

24. बुद्धिहीन जाने नहीं, मम अविनाशी भाव।
ब्रह्म सच्चिदानन्द को, माने वह नर राव।।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति, लोको माम् अजम् अव्ययम् ।७.२५।

25. छिपा योग माया रहूँ, नहिं प्रकट आभास।
मूढ़ नहीं मोहि जानते, जन्म रहित नहिं नाश।।

वेदाहं समतीतानि, वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि, मां तु वेद न कश्चन ।७.२६।

26. मैं जानू तिहुं काल के, प्राणिन को सुन पार्थ।
श्रद्धाभक्ती रहित नर, मुझे न जान यथार्थ।।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं, सर्गे यान्ति परंतप ।७.२७।

27. राग द्वेष उत्पन्न जो, सुख दुःखादिक द्वन्द्व।
भारत इनके मोहवश, जग अज्ञानी वृन्द।।

येषां त्व् अन्तगतं पापं, जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता, भजन्ते मां दृढव्रताः ।७.२८।

28. श्रेष्ठ कर्म शुभ आचरण, से कर निज अघ नाश।
मोह मुक्त दृढ़ निश्चयी, रहता मेरे पास।।

जरामरणमोक्षाय, माम् आश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद् विदुः कृत्स्नम् , अध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।

29. जरा मरण से छूट का, जो नर करे प्रयास।
मम शरणागत ह्वै रहे, जानकार सो खास।।

साधिभूताधिदैवं मां, साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां, ते विदुर् युक्तचेतसः ।७.३०।

30. यज्ञ, भूत अरु दैव अधि, सब वसुदेव स्वरूप।
जो जाने सो मुक्तचित, मेरा ही तद्रूप।।

" योग सप्त अध्याय का,ज्ञान और विज्ञान।
मम जीवन रथ के रथी,जयति कृष्ण भगवान।।
बिना भक्ति के ज्ञान जिमि, बिनु फल पेंड़ मदार।
कह किशोर हरिशरण गह, सहज होय भवपार।7।"

अथ अष्टमोऽध्यायः

८. अक्षरब्रह्मयोगः
अर्जुन उवाच

किं तद् ब्रह्म किम् अध्यात्मं, किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तम् , अधिदैवं किम् उच्यते ।८.१।

1. हे पुरुषोत्तम! ब्रह्म क्या? कर्म और अध्यात्म?
किसे कहें अधिदेव प्रभु? चिन्ता हरो तमाम।।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र, देहेऽस्मिन् मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं, ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ।८.२।

2. तन में रह अधियज्ञ किमि, मधुसूदन समझाव।
अन्त समय योगी पुरुष,कैसे तुमको पाव।।

श्रीभगवानुवाच
अक्षरं ब्रह्म परमं, स्वभावोऽध्यात्मम् उच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो, विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।८.३।

3. ब्रह्म परम अक्षर सुनो, निज स्वभाव अध्यात्म।
भूतभाव उत्पन्न जो, करे कर्म यह नाम।।

अधिभूतं क्षरो भावः, पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहम् एवात्र, देहे देहभृतां वर ।८.४।

4. नाशवान अधिभूत हैं, नर अधिसुर सम्राट।
वासुदेव तनु मध्य में, हूं अधियज्ञ विराट।।

अन्तकाले च माम् एव, स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं, याति नास्त्य् अत्र संशयः ।८.५।

5. मेरा ही सुमिरन करे, करे अन्त तन त्याग।
संशय रहित स्वरूप मम, पा लेता बड़भाग।।

यं यं वापि स्मरन् भावं, त्यजत्य् अन्ते कलेवरम्
तं तं एवैति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः ।८.६।

6. कुन्ती सुत मरते समय, जिसके जैसे भाव।
वही भाव में जनम हो, जैसा की श्रुतिगाव।।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु, माम् अनुस्मर युध्य च ।
मय्य् अर्पितमनोबुद्धिर् , माम् एवैष्यस्य् असंशयम् ।८.७।

7. सदा सुमिर मोहिं युद्ध कर, कर अर्पित मन बुद्धि।
निश्चय ही मोहिं पाओगे, अर्जुन कर चित शुद्धि।।

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं, याति पार्थानुचिन्तयन् ।८.८।

8. सतत ध्यान अभ्यास से, मन विचलित नहिं होय।
परम पुरुष को प्राप्तकर, धन्य कहावै सोय।।

कविं पुराणम् अनुशासितारम्
अणोर् अणीयांसम् अनुस्मरेद् यः ।
सर्वस्य धातारम् अचिन्त्यरूपम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।८.९।

9. सर्व, चिरन्तन, सूक्ष्मतम, शासक सर्वाधार।
रवि सम तेज प्रकाश प्रभु, भजो मिटे अँधियार।।
. अणुवत छोटा या बड़ा, सबका पोशक जौन।
रविवत् मन तम नाश कर, ध्यान योग्य प्रभु तौन।।

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर् मध्ये प्राणम् आवेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषम् उपैति दिव्यम् ।८.१०।

10. मृत्यु समय सुस्थिर मन, भक्ति योगबल युक्त।
भृकुटी मे रख प्रांण को, कर सुमिरन हो मुक्त।।

यद् अक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद् यतयो वीतरागाः ।
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत् ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।८.११।

11. वैदिक अक्षर ब्रह्म जप, रहें राग निर्लेप।
कैसे पाते परमपद, कहूं तुझे संक्षेप।।

सर्वद्वाराणि संयम्य, मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्य् आधायात्मनः प्राणम् , आस्थितो योगधारणाम् ।८.१२।

12. संयम कर मन हृदय से, रोक इन्द्रियां द्वार।
योग धारणा है यही, मस्तक प्रांणहि धार।।

ओम् इत्य् एकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन् माम् अनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन् देहं, स याति परमां गतिम् ।८.१३।

13. एकाक्षर जो ब्रह्म है, ऊँ नाम व्यवहार।
भजत परम गति को लहे, देह तजत संसार।।

अनन्यचेताः सततं, यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ, नित्ययुक्तस्य योगिनः ।८.१४।

14. अनन्य चित से जो सदा, करते मेरा ध्यान।
उसे सुलभ मैं हूं सदा, वह योगी पहिचान।।

माम् उपेत्य पुनर्जन्म, दुःखालयम् अशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः, संसिद्धिं परमां गताः ।८.१५।

15. मुझे प्राप्त कर जब मनुज, परम सिद्धि पा लेत।
पुनर्जन्म नहिं प्राप्त हो, मिले न दुःख निकेत।।

आब्रह्मभुवनाल् लोकाः, पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
माम् उपेत्य तु कौन्तेय, पुनर्जन्म न विद्यते ।८.१६।

16. ब्रह्म लोक पर्यन्त सब, पुनरावर्ती जान।
पुनर्जन्म उसका नहीं, जो कर मेरा ध्यान।।

सहस्रयुगपर्यन्तम् , अहर् यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां, तेऽहोरात्रविदो जनाः ।८.१७।

17. जो ब्रह्मा का एक दिन, नर युग होहिं हजार।
कालतत्व को जानते, योगी परम उदार।।

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः, प्रभवन्त्य् अहरागमे ।
राज्यागमे प्रलीयन्ते, तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।८.१८।

18. ब्रह्मा के दिन हों प्रकट,सकल चराचर झार।
रात्रिकाल हो लुप्त पुनि, अखिल लोक संसार।।

भूतग्रामः स एवायं, भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ, प्रभवत्य् अहरागमे ।८.१९।

19. प्रकृति विवश सुन पार्थ सब, उपजि भूत समुदाय।
काल रात्रि में होंय लय, यह क्रम सृष्टि कहाय।।
इसी शक्ति या प्रकृतिवश, सभी जीव समुदाय।
बंधे कर्म के पाश में, कैसे क्रम मिट जाय।।

परस् तस्मात् तु भावोऽन्यो, ऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु, नश्यत्सु न विनश्यति ।८.२०।

20. यह सब जो है जड़ प्रकृति, परा प्रकृति मम जौंन।
दिव्य, सनातन, शाश्वती, नहीं नष्ट हो तौन।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्य् उक्तस् , तम् आहुः परमां गतिम्
यं प्राप्य न निवर्तन्ते, तद् धाम परमं मम ।८.२१।

21. वह अक्षर या परम गति, परम पुरुष का धाम।
जिसे पाय नहिं जनम हो, जुगुल मिले विश्राम।।

पुरुषः स परः पार्थ, भक्त्या लभ्यस् त्व् अनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि, येन सर्वम् इदं ततम् ।८.२२।

22. जिनके अर्न्तगत रहें, सकल जगत के रूप।
पाते भक्त अनन्य ही,वह पद परम अनूप।।

यत्र काले त्व् अनावृत्तिम् , आवृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं, वक्ष्यामि भरतर्षभ ।८.२३।

23. अब मैं बतलाऊँ सुनो, काल मार्ग गति दोय।
जिससे जाकर जीव की, मुक्ति पुनर्भव होय।।
. कुंतीसुत! सुन काल की,गति जो उभय प्रकार।
पुनर्जन्म आवृत्ति दे, एक करे उद्धार।।

अग्निर् ज्योतिर् अहः शुक्लः, षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति, ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।८.२४।

24. शुक्ल पक्ष, उत्तर अयन, हो दिन सूर्य प्रकाश।
देह त्याग नर परमगति, लहहिं न फिर भवपाश।।

धूमो रात्रिस् तथा कृष्णः, षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर् , योगी प्राप्य निवर्तते ।८.२५।

25. कृष्ण पक्ष दक्षिण अयन, रात्रि धुआं अंधियार।
देह त्याग शुभ गति तदपि, मिले पुनः संसार।।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते, जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्य् अनावृत्तिम् , अन्ययावर्तते पुनः ।८.२६।

26. शुक्ल मार्ग या कृष्ण पथ, गमन मार्ग जग दोय।
एक गये नहिं आव पुनि, दूजे वापस होय।।

नैते सृती पार्थ जानन् , योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु, योगयुक्तो भवार्जुन ।८.२७।

27. दोनों मग यों जानकर, मोह यती न लेय।
ताते ही सब काल में, योग युक्त कौन्तेय।।
देव यान योगी चले, पितृ यान चढ़ि आन।
हैं किशोर दोनों सुलभ, ले अर्जुन पहिचान।।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत् सर्वम् इदं विदित्वा
योगी परं स्थानम् उपैति चाद्यम् ।८.२८।

28. वेदाध्यन, तप, दान, मख, जान ज्ञान के हेतु।
किन्तु परमपद प्राप्ति हित, बना योग का सेतु।।

" अक्षर ब्रह्म सु योग का,यह अष्टम अध्याय।
ऊँ नमः पार्थाय कह, ऊँ नमः कृष्णाय।।
अधिभौतिक सब कर्म कर, वासुदेव प्रति होम।
दृष्टा बन अधियज्ञ कर, नित जप अक्षर ओम।8।"

अथ नवमोऽध्यायः

९. राजविद्याराजगुह्ययोगः

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं, प्रवक्ष्याम्य् अनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं, यज् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।९.१।

1. दोष रहित अर्जुन सुनो, ज्ञान सहित विज्ञान।
परम गुप्त जेहिं जान कर, अशुभ न लहहिं सुजान।।

राजविद्या राजगुह्यं, पवित्रम् इदम् उत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं, सुसुखं कर्तुम् अव्ययम् ।९.२।

2. राजा सब विज्ञान का, पावन, गूढ़ सुश्रेष्ठ।
सुगम धर्म के मार्ग से,फल अविनाश यथेष्ट।।

अश्रद्दधानाः पुरुषा, धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि ।९.३।

3. जो नहिं मानें धर्म को, प्राप्त करें नहिं मोह।
कह किशोर अर्जुन वही,सृष्टि चक्र मंह सोह।।

मया ततम् इदं सर्वं, जगद् अव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं तेष्व् अवस्थितः ।९.४।

4. सकल जगत परिव्याप्त सुन, अलख रुप मोहि मांह।
मुझमे स्थित भूत सब, पर नहिं मैं स्थित तांह।।

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगम् ऐश्वरम् ।
भूतभृन् न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः ।९.५।

5. वे नहिं मुझमे शक्ति मम, धर्ता भर्ता रूप।
भूतों को पैदा करूं, रहूं न रहस अनूप।।

यथाकाशस्थितो नित्यं, वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्य् उपधारय ।९.६।

6. जैसे वायू गगन में, व्याप्त रहे सब ओर।
वैसे प्राणी जगत के, मुझमें जान किशोर।।

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस् तानि, कल्पादौ विसृजाम्य् अहम्।९.७।

7. अन्त समय सब लीन हो, मुझमें ही संसार।
करूं सृष्टि पुनि मैं सुनो, नये कल्प बहुबार।।

प्रकृतिं स्वाम् अवष्टभ्य, विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्रामम् इमं कृत्स्नम् , अवशं प्रकृतेर् वशात् ।९.८।

8. धारण कर निज प्रकृति को, लेकर उसका साथ।
कर्म रूप रच सृष्टि को, बार–बार सुन पार्थ।।

न च मां तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवद् आसीनम् , असक्तं तेषु कर्मसु ।९.९।

9. निरासक्त रह कर्म में, उदासीन रख भाव।
नहीं कर्म मोहि बांधते, सत्य कहूं सुन राव।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः, सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद् विपरिवर्तते ।९.१०।

10. मेरा ही आधार रख, रचे प्रकृति संसार।
बार–बार लेते जनम, जीव चराचर झार।।

अवजानन्ति मां मूढा, मानुषीं तनुम् आश्रितम् ।
परं भावम् अजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम् ।९.११।

11. मूरख मोहिं न जानते, मनुज रूप भगवान।
देह धरूं मैं जगत् हित, बिरले नर पहचान।।

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीम् आसुरीं चैव, प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।९.१२।

12. व्यर्थ कामना, कर्म अरु व्यर्थ ज्ञान रख मूढ़।
अज्ञानी, राक्षस, असुर, मोही, प्रकृति विमूढ़।।

महात्मानस् तु मां पार्थ, दैवीं प्रकृतिम् आश्रिताः ।
भजन्त्य् अनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिम् अव्ययम् ।९.१३

13. देव प्रकृति के आश्रित, भजत मोह सुन पार्थ।
जगत् हेतु, अविनाशि मैं, अक्षर, सतत, यथार्थ।।

सततं कीर्तयन्तो मां, यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या, नित्ययुक्ता उपासते ।९.१४।

14. नित्य करें मम कीर्तन, करें यत्न सह भक्ति।
नमन सदा अति प्रेम से, मम चरनन अनुरक्ति।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्य् अन्ये, यजन्तो माम् उपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम् ।९.१५।

15. ज्ञान यज्ञ से जो लखें, मेरा रूप विराट।
पृथक उपासक भाव के, सो योगी सम्राट।।

अहं क्रतुर् अहं यज्ञः, स्वधाहम् अहम्औषधम् ।
मन्त्रोऽहम् अहम्एवाज्यम् , अहम्अग्निर् अहं हुतम्

16. मैं विष्णू अरु यज्ञ मैं, स्वधा, औषधी, यंत्र।
मैं घृत, अग्नि, हवन क्रिया, हूँ मैं परम स्वतंत्र।।

पिताहम् अस्य जगतो, माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रम् ओंकार, ऋक् साम यजुर् एव च ।९.१७।

17. जग धारक, पितु, पितामह, माता अरु ओंकार।
ऋक, यजु, साम, अथर्व सब जानहु मोर प्रसार।।

गतिर् भर्ता प्रभुः साक्षी, निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं, निधानं बीजम् अव्ययम् ।९.१८।

18. जग कर्ता, भर्ता, सुहृद, साक्षी, प्रभू निवास।
शरण, प्रलय, कारण सभी, अविनाशी मैं खास।।

तपाम्य् अहम्अहं वर्षं, निगृह्णाम्य् उत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च, सद् असच् चाहम् अर्जुन ।९.१९।

19. मैं ही तपता सूर्य हूँ, बादल वर्षा हेतु।
मरण असत, सत् सभी मैं,मैं ही अमृत सेतु।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैर् इष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यम् आसाद्य सुरेन्द्रलोकम्
अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ।९.२०।

20. सगुण कर्म कर वेद विध, सोमपान निष्पाप।
पूजन कर मम यज्ञ से, करें स्वर्ग को प्राप्त।।
वेदत्रयी विधान से, करें कर्म अरु यज्ञ।
ता से भोंगे स्वर्ग सुख,देव भोग अति दिव्य।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्मम् अनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ।९.२१।

21. स्वर्ग लोक के भोग सुख, पुण्य होंय जब क्षीण।
वेद विहित कर्मन किये, लौटत पुनि नीज नीड़।।
पुण्यक्षीण ज्यों ही हुये, पुनि जन्में भू–लोक।
पुनर्जन्म के चक्र फंसि, रहहिं किशोर सशोक।।

अनन्याश् चिन्तयन्तो मां, ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां, योगक्षेमं वहाम्य् अहम्।९.२२।

22. अनन्य प्रेम निःकाम जन, मुझे भजे मन लाय।
नित चिन्तन रत ताहि को, योग–क्षेम दूं आय।।

येऽप्य् अन्यदेवता भक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि माम् एव कौन्तेय, यजन्त्य् अविधिपूर्वकम्

23. श्रद्धा से जो भजन कर, अपर देव कौन्तेय।
मुझको ही वे पूजते, नहिं जानत अज्ञेय।।
जो मेरा चिन्तन करे, है अनन्यमति सत्य।
योगक्षेम उनका सदा, मैं ही रक्षक नित्य।।

अहं हि सर्वयज्ञानां, भोक्ता च प्रभुर् एव च ।
न तु माम् अभिजानन्ति, तत्त्वेनातश् च्यवन्ति ते ।९.२४।

24. सब यज्ञों का भोक्ता, मैं ही हूँ,यह सत्य।।
जो जाने यह तत्व सो, आवागमन विमुक्त।।

यान्ति देवव्रता देवान् , पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।

25. भूत, पितर, सुर पूजते, पाते उनका लोक।
मुझे पूज मोहिं प्राप्तकर, रहता सदा विशोक।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं, यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तद् अहं भक्त्युपहृतम् , अश्नामि प्रयतात्मनः ।९.२६।

26. पत्र, पुष्प, फल और जल, अपर्ण कर निष्काम।
करूं ग्रहण अति प्रीति सह, सगुण रुप धरि श्याम।।

यत् करोषि यद् अश्नासि, यज् जुहोषि ददासि यत् ।
यत् तपस्यसि कौन्तेय, तत् कुरुष्व मदर्पणम् ।९.२७।

27. मुझको अपर्ण कर सदा, अर्जुन यह रख ध्यान।
जो भी करते हो ग्रहण, कर्म, हवन, तप, दान।।

शुभाशुभफलैर् एवं, मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तो माम् उपैष्यसि ।९.२८।

28. मंत्र समर्पण मूल है, रख संन्यासी भाव।
कर्म होंय शुभ या अशुभ, होगा नही प्रभाव।।

समोऽहं सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या, मयि ते तेषु चाप्य् अहम्

29. सभी जीव समभाव रख, नहिं अप्रिय, प्रिय कोय।
भजन करे जो प्रेम से, प्रकट होत मैं सोय।।

अपि चेत् सुदुराचारो, भजते माम् अनन्यभाक् ।
साधुर् एव स मन्तव्यः, सम्यग् व्यवसितो हि सः ।९.३०।

30. महा दुराचारी यदि, भजे मोहिं चित लाग।
उसको साधू मानिये, दिया अनिश्चय त्याग।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति ।९.३१।

31. होय तुरत धर्मात्मा, पाये नित मन शान्ति।
नहीं नष्ट हो भगत मम, अर्जुन तज दे भ्रान्ति।।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास् तथा शूद्रास् , तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।९.३२।

32. पाप योनि उत्पन्न नर, स्त्री,वैश्य या सूत।
पाते हैं सब परमगति, ले आश्रय मजबूत।।

किं पुनर् ब्राह्मणाः पुण्या, भक्ता राजर्षयस् तथा
अनित्यम् असुखं लोकम् , इमं प्राप्य भजस्व माम् ।९.३३।

33. क्या कहना फिर विप्र का, भक्त, राज, ऋषि तात।
क्षणभंगुर तन पायकें, भजन सदा कर पार्थ।।
अपचारी गर लहि शरण, पाते जब उद्धार।
पुण्यशील द्विज क्यों नहीं, कर सक आत्मसुधार।।

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु ।
माम् एवैष्यसि युक्त्वैवम् , आत्मानं मत्परायणः ।९.३४।

34. मुझे सौंप मन, भक्त बन, पूजो, करो प्रणाम।
पार्थ मुझी को प्राप्त कर, कह किशोर निःकाम।।

" सरल राज विद्या यही, राज गुह्य बतलाय।
ऊँ नमः कृष्णाय कह, पूर्ण नवम् अध्याय।।
विश्व एक मंदिर सदृश, अणु अणु में भगवान।
रहो करो प्रभु के लिये, राजमार्ग यह जान।9।"

अथ दशमोऽध्यायः

१०. विभूतियोगः

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो, शृणु मे परमं वचः ।
यत् तेऽहं प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि हितकाम्यया ।१०.१।

1. परम रहस्य प्रभाव युत्, महाबाहु यह बात।
अतिशय प्रेमी भक्त हो, कहता हूँ सो तात।।

न मे विदुः सुरगणाः, प्रभवं न महर्षयः ।
अहम्आदिर् हि देवानां, महर्षीणां च सर्वशः ।१०.२।

2. नहीं जानते देवगण, ऋषिजन मोर प्रभाव।
कारण सबका मैं प्रथम, रख मन में यह भाव।।

यो माम् अजम् अनादिं च, वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।१०.३।

3. लोक महेश्वर अजन्मा, अरु अनादि जो जान।
वह ज्ञानी नर होत है, पाप मुक्त हो मान।।

बुद्धिर् ज्ञानम् असंमोहः, क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो, भयं चाभयम् एव च ।१०.४।

4. बुद्धि, ज्ञान, संतोष, शम, दम, सुख–दुःख, जय–हार।
भाव, अभाव, क्षमा तथा, भय या अभय विचार।।

अहिंसा समता तुष्टिस् , तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां, मत्त एव पृथग्विधाः ।१०.५।

5. ज्ञान और अज्ञानता, तुष्टि, अहिंसा भाव।
यश, अपयश उपजहिं सकल, मेरा जान स्वभाव।।

महर्षयः सप्त पूर्वे, चत्वारो मनवस् तथा ।
मद्भावा मानसा जाता, येषां लोक इमाः प्रजाः ।१०.६।

6. चौदह मनु अरु सप्तऋषि, मुनि सनकादिक चार।
सकल सृष्टि के सृजन में, मम संकल्प विचार।।

एतां विभूतिं योगं च, मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन, युज्यते नात्र संशयः ।१०.७।

7. इस विभूति के योग को,लखे तत्व से लोग।
निश्चय ही उनको मिले, अचल भक्ति का योग।।

अहं सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां, बुधा भावसमन्विताः ।१०.८।

8. मै कारण जग–जनम का, सकल पदारथ लाग।
बुद्धिमान भजते सदा, श्रद्धा रख मन जाग।।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा, बोधयन्तः परस्परम् ।,
कथयन्तश्च मां नित्यं, तुष्यन्ति च रमन्ति च ।१०.९।

9. मुझ में चित अरु प्रांण रख, करें भक्ति की गाथ।
कहें कथा नित प्रीति सह, रमण करें मम साथ।।

तेषां सततयुक्तानां, भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं, येन माम् उपयान्ति ते ।१०.१०।

10. सतत ध्यान मे जो लगे, भजें प्रेम से मोह।
देता सम्यक ज्ञान मैं, अंत धाम मम सोह।।

तेषाम् एवानुकम्पार्थम् , अहम्अज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्य् आत्मभावस्थो, ज्ञानदीपेन भास्वता ।१०.११।

11. कर ऊपर उसके कृपा, ह्रदय बैठ भगवान।
तत्व ज्ञान के दीप से,नांशहि तम अज्ञान।।

अर्जुन उवाच
परं ब्रह्म परं धाम, पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यम् , आदिदेवम् अजं विभुम् ।१०.१२।

12. परब्रह्म परमात्मा, प्रभु शाश्वत, परधाम।
आदिदेव अरु अज,विभू, पावन पुरुष ललाम।।

आहुस् त्वाम् ऋषयः सर्वे, देवर्षिर् नारदस् तथा ।
असितो देवलो व्यासः, स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।१०.१३।

13. सर्व व्याप्त नहिं जनम ले,बरनहिं ऋषी तमाम।
व्यास, असित,नारद तथा, देवल भज निष्काम।।

सर्वम् एतद् ऋतं मन्ये, यन् मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन् व्यक्तिं, विदुर् देवा न दानवाः ।१०.१४।

14. कहें आप मैं मानता, सत्य सुनो जगदीश।
लीलामय तव रुप को,जानहिं असुर न ईश।।

स्वयम् एवात्मनात्मानं, वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश, देवदेव जगत्पते ।१०.१५।

15. देवदेव, भूतेश, प्रभु, पुरुषोत्तम भगवान।
आप जानते स्वयं को, और न दूसर जान।।

वक्तुम् अर्हस्य् अशेषेण, दिव्या ह्य् आत्मविभूतयः ।
याभिर् विभूतिभिर् लोकान् , इमांस् त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।१०.१६।

16. जिन विभूतियों सहित प्रभु, लोक में स्थित आप।
समरथ उनके कथन में, पूर्णरूप जग व्याप।।

कथं विद्याम् अहं योगिंस् , त्वां सदा परिचिन्तयन्
केषु केषु च भावेषु, चिन्त्योऽसि भगवन् मया

17. करूं ध्यान किस भाव से, कैसे रहूँ सनाथ।
हे योगेश्वर! किस तरह, तुमको जानूं नाथ।।

विस्तरेणात्मनो योगं, विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर् हि, शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।१०.१८।

18. योग शक्ति वर्णन करो, निज विभूति विस्तार।
कहिये अमृत मय वचन, तृप्ति न सुन उद्गार।।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि, दिव्या ह्य् आत्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ, नास्त्य् अन्तो विस्तरस्य मे ।१०.१९।

19. हैं विभूति विस्तारमय, पर जो दिव्य प्रधान।
उन विभूतियों को सुनो, हे कुरुश्रेष्ठ महान।।

अहम्आत्मा गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः ।
अहम्आदिश्च मध्यं च, भूतानाम् अन्त एव च

20. आत्मरूप सबके हृदय, गुडाकेश! मोहि जान।
आदि, मध्य अरु अंत मैं, सब भूतों का मान।।

आदित्यानाम् अहं विष्णुर् , ज्योतिषां रविर् अंशुमान्
मरीचिर् मरुताम् अस्मि, नक्षत्राणाम् अहं शशी ।१०.२१।

21. ज्योति श्रेष्ठ, रवि हूँ तथा, विष्णु अदिति सुत जान।
मैं मरीचि हूँ पवन बिच, शशि तारों में मान।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि, देवानाम् अस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि, भूतानाम् अस्मि चेतना ।१०.२२।

22. सामवेद वेदन बिचे, मैं ही इन्द्र सुदेव।
इन्द्रिय में मन प्रांण बिच, चेत जीव गनिलेव।।

रुद्राणां शंकरश् चास्मि, वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश् चास्मि, मेरुः शिखरिणाम् अहम्।१०.२३।

23. रुद्रगणों में शम्भु मैं, यक्षन श्रेष्ठ कुबेर।
वसुओं मे हूँ अग्नि मैं, पर्वत माहि सुमेरु।।

पुरोधसां च मुख्यं मां, विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनाम् अहं स्कन्दः, सरसाम् अस्मि सागरः ।१०.२४।

24. पुरोहितों में देवगुरु, सेनापति स्कन्द।
समुद्र जलाशय मध्य मैं, सुन अर्जुन मतिमन्द।।

महर्षीणां भृगुर् अहं, गिराम् अस्म्य् एकम् अक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि, स्थावराणां हिमालयः ।१०.२५।

25. भृगु महर्षि महं जान लो, शब्दाक्षर में ओम्।
यज्ञों में जप यज्ञ मैं, हिमगिरि छूता व्योम्।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां, देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः, सिद्धानां कपिलो मुनिः ।१०.२६।

26. पीपल वृक्षों में तथा, मैं नारद देवर्षि।
गन्धर्वों में चित्ररथ, मैं ही कपिल महर्षि।।

उच्चैःश्रवसम् अश्वानां, विद्धि माम् अमृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां, नराणां च नराधिपम् ।१०.२७।

27. घोड़ों मे उच्चैश्रवा, ऐरावत गजराज।
नरन मध्य मैं नृपति हूँ, अर्जुन है ये राज।।

आयुधानाम् अहं वज्रं, धेनूनाम् अस्मि कामधुक् ।
प्रजनश् चास्मि कन्दर्पः, सर्पाणाम् अस्मि वासुकिः

28. शस्त्रों में हूँ वज्र मैं, गो सुर धेनु विचार।
प्रजा लाग मैं काम हूँ, वासुकि सर्प मझार।।

अनन्तश् चास्मि नागानां, वरुणो यादसाम् अहम्।
पितृणाम् अर्यमा चास्मि, यमः संयमताम् अहम्

29. मैं अनन्त हूँ नागमह, वरुण श्रेष्ठ जलराज।
पितरगणों में अर्यमा, शासन हित यमराज।।

प्रह्लादश् चास्मि दैत्यानां, कालः कलयताम् अहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं, वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।१०.३०।

30. दैत्यों में प्रह्लाद हूँ, गणना हित मैं काल।
पशुओं मे हूँ सिंह अरु, गरुड़ पक्षि रिपु व्याल।।

पवनः पवताम् अस्मि, रामः शस्त्रभृताम् अहम्।
झषाणां मकरश् चास्मि, स्रोतसाम् अस्मि जाह्नवी ।१०.३१।

31. पावन कर्ता पवन मैं, शस्त्र धरैं जो राम।
झषगण में हूँ मकर मैं, गंगा नदी सुनाम।।

सर्गाणाम् आदिर् अन्तश्च, मध्यं चैवाहम् अर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां, वादः प्रवदताम् अहम्।१०.३२।

32. सृष्टि सर्ग में आदि अरु, मध्य तथा हूँ अंत।
विद्या मे अध्यात्म अरु, कहहिं वाद मोहि संत।।

अक्षराणाम् अकारोऽस्मि, द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहम्एवाक्षयः कालो, धाताहं विश्वतोमुखः ।१०.३३।

33. द्वन्द्व समास, अकार मैं, कालाक्षर महाकाल।
पोषक जगदाधार अरु, मैं विराट विकराल।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहम् , उद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर् वाक् च नारीणां, स्मृतिर् मेधा धृतिः क्षमा

34. मृत्यु, सर्वहर और मैं, उत्पति जग का हेतु।
नारि कीर्ति, श्री, वाक्धृति, स्मृति, बुधि, शमसेतु।।

बृहत्साम तथा साम्नां, गायत्री छन्दसाम् अहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहम् , ऋतूनां कुसुमाकरः ।१०.३५।

35. वृहत्साम गायन मधुर, अरु गायत्री छन्द।
मार्गशीर्ष हूँ मास में, ऋतु वसंत स्वच्छन्द।।

द्यूतं छलयताम् अस्मि, तेजस् तेजस्विनाम् अहम्
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि, सत्त्वं सत्त्ववताम् अहम्

36. छलियों में मैं द्यूत हूँ, अरु तेजसी प्रभाव।
जीत हेतु जय निश्चयी, शुभहित सात्विक भाव।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि, पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनाम् अप्य् अहं व्यासः, कवीनाम् उशना कविः

37. वृष्णिवंश वसुदेव मैं, पाण्डव अर्जुन जान।
मैं मुनियों में व्यास हूँ, कवि उशना पहिचान।।

दण्डो दमयताम् अस्मि, नीतिर् अस्मि जिगीषताम्
मौनं चैवास्मि गुह्यानां, ज्ञानं ज्ञानवताम् अहम्।१०.३८।

38. दमन हेतु मैं दण्ड हूँ, जय इच्छाहित नीति।
गुप्तभाव हित मौंन मैं, तत्व ज्ञान परतीति।।

यच् चापि सर्वभूतानां, बीजं तद् अहम्अर्जुन ।
न तद् अस्ति विना यत् स्यान् , मया भूतं चराचरम् ।१०.३९।

39. सभी भूत उत्पत्ति का, कारण मुझको जान।
सकल चराचर भूत में, मुझसे पृथक न आन।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां, विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो, विभूतेर् विस्तरो मया ।१०.४०।

40. दिव्य अनन्त विभूतियां, जामें विश्व समाय।
सुनहु परन्तप! तोर हित, अति संक्षेप बुझाय।।

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं, श्रीमद् ऊर्जितम् एव वा ।
तत् तद् एवावगच्छ त्वं, मम तेजोऽंशसंभवम् ।१०.४१।

41. कान्ति, शक्ति, ऐश्वर्य मय, जो जग वस्तु लखात।
वह विभूति से युक्त है, तेज अंश मम तात।।

अथवा बहुनैतेन, किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहम् इदं कृत्स्नम् , एकांशेन स्थितो जगत्

42. अधिक जान क्या करोगे, अर्जुन इतना सार।
है किशोर परमात्म का, एक अंश विस्तार।।

" प्रभु विभूति के योग का, पूरा दशमध्याय।
ऊँ नमः पार्थाय जय, ऊँ नमः कृष्णाय।।
वासुदेव चातुष्टमय, प्रभु की सकल विभूति।
अपनी ओर निहार भज, एकहिं पाद प्रभूति।10।"

अथ एकादशोऽध्यायः

११. विश्वरूपदर्शनयोगः

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं, गुह्यम् अध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत् त्वयोक्तं वचस् तेन, मोहोऽयं विगतो मम

1 गोपनीय अध्यात्ममय, परम कृपा से पूर्ण।
समयोचित उपदेश सुन, मोह हुआ मम चूर्ण।।

भवाप्ययौ हि भूतानां, श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम् अपि चाव्ययम्

2. सुनी भूत उत्पत्ति लय, जैसी विविध प्रकार।
अविनाशी महिमा प्रभू, सुनी सहित विस्तार।।

एवम् एतद् यथात्थ त्वम् , आत्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुम् इच्छामि ते रूपम् , ऐश्वरं पुरुषोत्तम ।११.३।

3. जैसा कहते हो प्रभू, तुम हो उसी प्रकार।
ज्ञान, भक्ति, बल, वीर्य को, देखन की दरकार।।

मन्यसे यदि तच् छक्यं, मया द्रष्टुम् इति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं, दर्शयात्मानम् अव्ययम्

4. यदि सम्भव है देखना, मुझे आपका रूप।
दर्शन मोह कराइये, हे योगेश अनूप।।

श्रीभगवानुवाच
पश्य मे पार्थ रूपाणि, शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि च ।११.५।

5. देख पार्थ मम रूप को, नाना आकृति वर्ण।
शत, हजार नाना वरन्, दिव्य, अचिन्त्य, अवर्ण।।

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रान् , अश्विनौ मरुतस् तथा ।
बहून्य् अदृष्टपूर्वाणि, पश्याश्चर्याणि भारत ।११.६।

6. द्वादश रवि, आश्विन, पवन, वसुगण, रुद्र स्वरूप।
भारत देख अपूर्व मम, अचरजमय मम रूप।।

इहैकस्थं जगत् कृत्स्नं, पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश, यच् चान्यद् द्रष्टुम् इच्छसि ।११.७।

7. मेरे इसी शरीर में, देख चराचर जीव।
जो तू चाहे देख सब, हैं सब यहां सजीव।।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुम् , अनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः, पश्य मे योगम् ऐश्वरम् ।११.८।

8. पर इन प्राकृत नयन से, नहीं सकोगे देख।
दिव्य चक्षु देता तुम्हें, योग शक्ति से पेख।।

संजय उवाच
एवम् उक्त्वा ततो राजन् , महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय, परमं रूपम् ऐश्वरम् ।११.९।

9. ऐसा कह हरि चुप हुये,सुनिये न्यारे भूप।
कृष्ण महा योगेश ने, दिखलाया निज रूप।।

अनेकवक्त्रनयनम् , अनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं, दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।११.१०।

10. नाना मुख, बहु नेत्र अरु, दिव्याभूषण युक्त।
अद्भुत दर्शन हांथ बहु, शस्त्रों से संयुक्त।।

दिव्यमाल्याम्बरधरं, दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवम् , अनन्तं विश्वतोमुखम् ।११.११।

11. वस्त्र माल घृत, गंधयुत्, विश्वरूप सम्राट।
रूप सुधा आश्चर्य निधि, पावन परम विराट।।

दिवि सूर्यसहस्रस्य, भवेद् युगपद् उत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् , भासस् तस्य महात्मनः

12. सुन राजन आकाश जिमि, सूरज उगहिं हजार।
तदपि विराट प्रकाश लखि, है किशोर निःसार।।

तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं, प्रविभक्तम् अनेकधा ।
अपश्यद् देवदेवस्य, शरीरे पाण्डवस् तदा ।११.१३।

13. देखे अर्जुन ने तभी, विविध जगत के रूप।
कृष्णदेव अधिदेव में, स्थित दृश्य अनूप।।

ततः स विस्मयाविष्टो, हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं, कृताञ्जलिर् अभाषत

14. विश्वरूप लखि पुलकितनु, अर्जुन हुये विभोर।
तब विराट प्रभु कृष्ण से, बोले दोउ कर जोर।।

अर्जुन उवाच
पश्यामि देवांस् तव देव देहे
सर्वांस् तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणम् ईशं कमलासनस्थम्
ऋषींश्च सर्वान् उरगांश्च दिव्यान ।११.१५।

15. देख रहा सब देह में, देव भूत समुदाय।
ब्रह्मा, शिव, ऋषि, सर्पगण, नहीं शेष कछु आय।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस् तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।११.१६।

16. बाहु, उदर, मुख, नेत्र बहु,देख रहा विश्वेश।
आदि, अन्त अरु मध्य बिनु, हे अनंत रूपेश।।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्
दीप्तानलार्कद्युतिम् अप्रमेयम् ।११.१७।

17. मुकुट, गदा अरु चक्र सह, तेजस् पुंज प्रकाश।
अग्नि सूर्य की ज्योति सम, अप्रमेय चहुं पास।।

त्वम् अक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वम् अस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वम् अव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस् त्वं पुरुषो मतो मे ।११.१८।

18. परमाक्षर, पर ब्रहम है, आश्रय जगदाधार।
शाश्वत अविनाशी पुरुष, धर्म सनातन सार।।

अनादिमध्यान्तम् अनन्तवीर्यम्
अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वम् इदं तपन्तम् ।११.१९।

19. आदि, अन्त अरु मध्य बिन, आप्त विभू समरत्थ।
अमित भुजा, ज्योर्तिनयन, पवमुख जग संतप्त।।

द्यावापृथिव्योर् इदम् अन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपम् उग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ।११.२०।

20. स्वर्ग, भूमि, आकाश, दिशि, है सब में आलोक।
दिव्य, अलौकिक रूप से, व्यथित तीनहूं लोक।।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद् भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्य् उक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ।११.२१।

21. कर प्रवेश कछु भय सहित, करें जाप गुण,नाम।
सिद्ध, ऋषी स्त्रोत से, स्तुति करहिं प्रणाम।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश् चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश् चैव सर्वे ।११.२२।

22. रुद्रादिक, वसु, साध्यगण, पितरों का समुदाय।
सिद्व, यक्ष, गन्धर्व लखि, विस्मित असुर निकाय।।

रूपं महत् ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास् तथाऽहम्

23. महाबाहु! बहु आपके, हाथ, नेत्र, मुख पेख।
उदर, दाढ़, विकराल छवि, व्याकुल हूं सब देख।।

नभःस्पृशं दीप्तम् अनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ।११.२४।

24. हे! प्रभु नभ को छुअत है, मुख से निकली ज्वाल।
शान्ति न प्रभु जबसे नयन, देखा क्रोध विशाल।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।११.२५।

25. काल अनल सम दीखता, प्रभु का आनन आज।
दिशाहीन बेचैन की, जगनिवास रख लाज।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस् तथासौ
सहास्मदीयैर् अपि योधमुख्यैः ।११.२६।

26. भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र सुत,कौरव सैन्य प्रधान।
कर्णादिक सैनिक, नृपति, पक्ष विपक्ष दोउ आन।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद् विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैर् उत्तमाङ्गैः ।११.२७।

27. बड़े वेग से जा रहे, मुख विशाल के मध्य।
फंसे दाढ़ बिच, शिर फटे, संलग्नित द्रष्टव्य।।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रम् एवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्य् अभिविज्वलन्ति ।११.२८।

28. जैसे नदियां बाढ़ में, जातीं सागर ओर।
वैसे करें प्रवेश मुख, नृपति, वीर कर शोर।।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्
तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।११.२९।

29. यथा पतंगा मरण हित, ज्वाल देख टकरात।
वैसहि वीर विराट मुख, प्रविश नष्ट हो जात।।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्
लोकान् समग्रान् वदनैर् ज्वलद्भिः ।
तेजोभिर् आपूर्य जगत् समग्रं
भासस् तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।११.३०।

30. जलते मुख से लोक को, चाट रहे हो आप।
उग्र तेज तव जगत को, देता है अति ताप।।

आख्याहि मे को भवान् उग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुम् इच्छामि भवन्तम् आद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ।११.३१।

31. कृपया मुझे बताइये, उग्ररूप तुम कौन।
नमस्कार प्रभु आपको, कह अर्जुन भे मौन।

श्रीभगवानुवाच
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुम् इह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।११.३२।

32. महाकाल हूँ इस समय, करूं लोक सब नाश।
प्रतिपक्षी तेरे बिना, सबका करूं विनाश।।

तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वम् एव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।११.३३।

33. उठो कीर्ति को प्राप्त कर, करके इन्हें परास्त।
मैं मारा इनको प्रथम,िनमित मात्र बन पार्थ।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यान् अपि योधवीरान् ।
मया हतांस् त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।११.३४।

34. भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, करण, जान सभी का नाश।
शत्रु मृतक सब जानकर, कर जय हेतु प्रयास।।

संजय उवाच
एतच् छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर् वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।११.३५।

35. हाथ जोड़ कर पृथासुत, सुन केशव की बात।
कर प्रणाम कहने लगा, थरथर कंपित गात।।

अर्जुन उवाच
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत् प्रहृष्यत्य् अनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ।११.३६।

36. हर्षित जग कर कीर्तन, तव प्रभाव गुण,नाम।
भय वश राक्षस भागते, करते सिद्ध प्रणाम।।

कस्माच् च ते न नमेरन् महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्य् आदिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वम् अक्षरं सद् असत् तत्परं यत् ।११.३७।

37. ब्रह्मा के भी आदि तुम, हे प्रभु जगन्निवास।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, नमस्कार कर दास।।

त्वम् आदिदेवः पुरुषः पुराणस्
त्वम् अस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वम् अनन्तरूप ।११.३८।

38. आदि देव, प्रभु पुरुष तुम, तुम्हीं किशोर पुराण।
परमधाम, परिपूर्ण तुम, तुम ही विश्व निधान।।

वायुर् यमोऽग्निर् वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस् त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।११.३९।

39. वायु, अग्नि, यम, वरुण, शशि, तुम्हीं प्रजापति देव।
प्रपितामह मेरा नमन, सहस बार प्रभु लेव।।

नमः पुरस्ताद् अथ पृष्ठतस् ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस् त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।११.४०।

40. हे अनन्त सामर्थ्य प्रभु, सबमें रूप तुम्हार।
सभी ओर से, भांति सब, चरण प्रणाम हमार।।

सखेति मत्वा प्रसभं यद् उक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ।११.४१।

41. सखा, कृष्ण, यादव कहा, मैंने भाव कुभाव।
प्रेम, प्रमाद, अजानवश, जाना नहीं प्रभाव।।

यच् चावहासार्थम् असत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्य् अच्युत तत्समक्षं
तत् क्षामये त्वाम् अहम्अप्रमेयम् ।११.४२।

42. हॅसी हॅसी में या कभी, करत अहार विहार।
भूल करी हो जो प्रभू, क्षमा करें करतार।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वम् अस्य पूज्यश्च गुरुर् गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्य् अभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्य् अप्रतिमप्रभाव ।११.४३।

43. आप चराचर के पिता, गुरु अरु पूज्य महान।
आप सदृश अनुपम, अमित, लोक न कोऊ आन।।

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वाम् अहम्ईशम् ईड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।११.४४।

44. पिता, मित्र, पति सहहिं जिमि, आश्रित का अपमान।
सुत, पत्नी या मित्रवत्, मुझे क्षमहिं भगवान।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तद् एव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।११.४५।

45. अलख रूप तव देखकर, हूँ प्रसन्न भय साथ।
हो प्रसन्न पुनि दर्श दें, रूप चर्तुभुज नाथ।।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तम्
इच्छामि त्वां द्रष्टुम् अहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।११.४६।

46. मुकुट,गदा अरु चक्र सह, पुनि दर्शन दें नाथ।
सहस्त्रबाहु, जगरूप प्रभु, चार भुजा के साथ।।

श्रीभगवानुवाच
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितम् आत्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वम् अनन्तम् आद्यं
यन् मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।११.४७।

47. देखा योग प्रभाव जो, तुमने रूप विराट।
और न इसको लख सका, कोई भी सम्राट।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर् न दानैर्
न च क्रियाभिर् न तपोभिर् उग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ।११.४८।

48. यज्ञ दान या वेद पढ़, अथवा तप कर घोर।
विश्व रूप मेरा नहीं, देख सका कोई और।।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरम् ईदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस् त्वं
तद् एव मे रूपम् इदं प्रपश्य ।११.४९।

49. रूप भयंकर देखकर, मत व्याकुल हो पार्थ।
नहीं उचित भय, मूढ़ता, वही रूप लख तात।।

संजय उवाच
इत्य् अर्जुनं वासुदेवस् तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतम् एनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर् महात्मा ।११.५०।

50. ऐसा कह श्रीकृष्ण ने, दिखलाया पुनि रूप।
धैर्य पार्थ को दे धरा, सोई सौम्य स्वरूप।।

अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं, तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीम् अस्मि संवृत्तः, सचेताः प्रकृतिं गतः ।११.५१।

51. मनुज रूप तव देखकर, सौम्य शान्त अविकार।
मन स्थिर अब हो गया, हर्षित हृदय अपार।।

श्री भगवान उवाच–

सुदुर्दर्शमिदं मानुषं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
*देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।।*११.५१।

52. अति दुर्लभ दर्शन यही, रूप चतुर्भुज मोर।
देव सदा आशा करत,दर्शन मिले किशोर।।

नाहं वेदैर् न तपसा, न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं, दृष्टवानसि मां यथा ।

53. वेदाध्यन,तप,दान अरु, यज्ञ करे पुनि कोय।
रूप चर्तुभुज का मेरा, दरश न पावे सोय।।

भक्त्या त्व् अनन्यया शक्य, अहम्एवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन, प्रवेष्टुं च परंतप ।११.५४।

54. भक्ति अनन्य सुलभ सदा, दरश चतुर्भुज रूप।
ऐसे ही सत ज्ञान अरु, अर्जुन मिले स्वरूप।।

मत्कर्मकृन् मत्परमो, मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु, यः स माम् एति पाण्डव

55. किसी कर्म में जगत के, कभी न हो आसक्त।
मम निर्भर, निर्वैर वह, मुझे प्राप्त वह भक्त।।

"एकादश अध्याय में, विश्वरूप का योग।
ॐ नमः कृष्णाय कह, तजते भ्रम को लोग।।
ज्ञान भक्ति की भूमिका, भक्ति ज्ञान का लक्ष्य।
मैं अरु तू का द्वैत जो, विश्वरूप का भक्ष्य।11।"

अथ द्वादशोऽध्यायः

१२. भक्तियोगः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये, भक्तास् त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्य् अक्षरम् अव्यक्तं, तेषां के योगवित्तमाः ।

1. कौन श्रेष्ठ दो में प्रभू, एक निष्ठ तव भक्त।
या जो करे उपासना, अक्षर, ब्रहम अव्यक्त।।

श्रीभगवानुवाच

मय्य् आवेश्य मनो ये मां, नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास् , ते मे युक्ततमा मताः ।१२.२।

2. मुझमें मन एकाग्र कर, करे भक्त मम ध्यान।
उत्तम योग किशोर यह, सगुणोपासक मान।।

ये त्व् अक्षरम् अनिर्देश्यम् , अव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च, कूटस्थम् अचलं ध्रुवम् ।

3. इन्द्रिय, मन अरु बुद्वि को, पकड़ सके अव्यक्त।
समदर्शी सर्वत्र लख, आत्मनिष्ठ सो भक्त।।

संनियम्येन्द्रियग्रामं, सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति माम् एव, सर्वभूतहिते रताः ।१२.४।

4. अविनाशी अरु एक रस, सत्, चिदानन्द कहलाय।
निरत जीव कल्याण में, सो नर मुझको पाय।।

क्लेशोऽधिकतरस् तेषाम् , अव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर् दुःखं, देहवद्भिर् अवाप्यते ।

5. बुद्धि और मन को दुःखद, निर्गुण मांहि प्रवेश।
देहधारियों के लिये, यह साधन दे क्लेश।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि, मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन, मां ध्यायन्त उपासते ।१२.६।

6. करते ध्यान उपासना, सौंप सकल जो कर्म।
एकनिष्ठ दृढ़ भक्ति से, पार्थ समझ निज धर्म।।

तेषाम् अहं समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात् पार्थ, मय्य् आवेशितचेतसाम्

7. अपने भक्तों का सदा, मैं करता उद्धार।
मुझे प्राप्त कर लेत वह, तर समुद्र संसार।।

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्वं न संशयः ।१२.८।

8. मन बुद्धी मुझमे लगा, हो निवास मम माह।
नहिं संशय इसमें कदपि, सत्य कहूँ नरनाह।।

अथ चित्तं समाधातुं, न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो, माम् इच्छाप्तुं धनंजय ।

9. नहिं स्थिर मन कर सको, यदि मुझमें कौन्तेय।
करो योग अभ्यास से, मुझे प्राप्त अविजेय।।

अभ्यासेऽप्य् असमर्थोऽसि, मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थम् अपि कर्माणि, कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि ।

10. यदि अभ्यास न कर सको, कर लो इतना पार्थ।
सब कुछ कर मेरे लिये, मानो जन्म कृतार्थ।।

अथैतद् अप्य् अशक्तोऽसि, कर्तुं मद्योगम् आश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं, ततः कुरु यतात्मवान् ।१२.११।

11. यदि इतना भी कठिन तो, सुन अर्जुन बड़भाग।
कर किशोर मन, बुद्धि जय, सकल कर्मफल त्याग।।

श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासाज् , ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस् , त्यागाच् छान्तिर् अनन्तरम् ।

12. ज्ञान श्रेष्ठ अभ्यास से, बिन जाने नहिं मर्म।
ध्यान श्रेष्ठ पुनि ताहि से, श्रेष्ठ त्याग फल कर्म।।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां, मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः, समदुःखसुखः क्षमी ।१२.१३।

13. द्वेष भाव से रहित नर, मित्रभाव से युक्त।
अहमशून्य करुणा ह्रदय, मन ममता से मुक्त।।

संतुष्टः सततं योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्य् अर्पितमनोबुद्धिर् , यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।१२.१४।

14. सुख दुख में समभाव युत, क्षमाशील संतुष्ट।
एकाग्री, दृढ़ निश्चयी, मम प्रिय भक्त सुपुष्ट।।

यस्मान् नोद्विजते लोको, लोकान् नोद्विजते च यः
हर्षामर्षभयोद्वेगैर् , मुक्तो यः स च मे प्रियः ।१२.१५।

15. दुखी न हो नहिं देय दुख, जीव मात्र को जोय।
भय, ईर्ष्या, उद्वेग से, रहित भक्त प्रिय मोय।।

अनपेक्षः शुचिर् दक्ष, उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।१२.१६।

16. जो आकांक्षा रहित जन, पक्षपात से हीन।
ज्ञानी परम पवित्र वह, साधक भक्त प्रवीन।।

यो न ह्रष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान् यः स मे प्रियः ।

17. नहिं प्रसन्न प्रिय प्राप्ति में, दुःखी न अप्रिय साथ।
शोक कामना रहित जो, भक्त परम प्रिय पार्थ।।

समः शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः सङ्गविवर्जितः ।१२.१८।

18. शत्रु मित्र,शीतोष्ण सम, मान और अपमान।
निरासक्त निर्द्वन्द्व जो, है मम भक्त महान।।

तुल्यनिन्दास्तुतिर् मौनी, संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर् , भक्तिमान् मे प्रियो नरः

19. निन्दा स्तुति उभय सम, मननशील रह मौंन।
रहे आत्म संतुष्ट जो, मोहि भक्त प्रिय तौंन।।

ये तु धर्म्यामृतम् इदं, यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा, भक्तास् तेऽतीव मे प्रियाः

20. जो एकनिष्ठ श्रद्धा रखें, सुनें धर्म की बात।
अतिशय प्रिय वे भक्त हैं, फल त्यागी जो पार्थ।।

"भक्तियोग का रुप यह, बारहवॉ अध्याय।
ऊॅ नमः पार्थाय जय, ऊॅ नमः कृष्णाय।।
प्रेम तत्व परमात्मा, नहीं देह व्यापार।
मन उनका अपना बने, जुगल प्रेम आधार।12।'

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

१३. क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगः

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रम् इत्य् अभिधीयते ।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।१३.१।

1. क्षेत्र जान इस देह को, अरु ज्ञाता क्षेत्रज्ञ।
ज्ञानीजन कहते इसे, जो इसके तत्वज्ञ।।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर् ज्ञानं, यत् तज् ज्ञानं मतं मम

2. सभी देह जीवात्मा, मुझे जान कौन्तेय।
मेरा अभिमत है सुनो, तत्व ज्ञान ये दोय।।

तत् क्षेत्रं यच् च यादृक् च, यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च, तत् समासेन मे शृणु ।१३.३।

3. क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ सुन, है जैसे, जिस भाव।
उनको सुन संक्षेप जिमि, करें विकार प्रभाव।।

ऋषिभिर् बहुधा गीतं, छन्दोभिर् विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव, हेतुमद्भिर् विनिश्चितैः ।१३.४।

4. ऋषियों ने गाया इसे, पृथक–पृथक कह छन्द।
ब्रहम सूत्र पद भी कहे, युक्ति युक्त स्वच्छन्द।।

महाभूतान्य् अहंकारो, बुद्धिर् अव्यक्तम् एव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च, पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।१३.५।

5. महाभूत, मति, अहम अरु, इन्द्रिय मन अव्यक्त।
विषय पांच कर्मेन्द्रियां, सुनो ध्यान दे भक्त।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं, संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत् क्षेत्रं समासेन, सविकारम् उदाहृतम् ।१३.६।

6. राग द्वेष, सुख,दुख अरु,स्थूल देह का रूप।
सह विकार धृति चेतना, क्षेत्र विकार अनूप।।

अमानित्वम् अदम्भित्वम् , अहिंसा क्षान्तिर् आर्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं, स्थैर्यम् आत्मविनिग्रहः ।१३.७।

7. अहम भाव, हिंसा, कपट, हृदय न लावे भाव।
गुरुसेवा, शुचि, धीरता, मन निग्रही स्वभाव।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम् , अनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि-दुःखदोषानुदर्शनम् ।१३.८।

8. लोक और परलोक में, हो आसक्ति अभाव।
जन्म, जरा, दुःख, मृत्यु का, ना चिन्तन ना भाव।।

असक्तिर् अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वम् , इष्टानिष्टोपपत्तिषु ।१३.९।

9. रिश्तों से निर्मोह रह, गृह आदिक सुत दार।
इष्ट अनिष्ट, समान चित, ममता रहित उदार।।

मयि चानन्ययोगेन, भक्तिर् अव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वम् , अरतिर् जनसंसदि ।१३.१०।

10. मुझमें भाव अनन्य हो, दोष रहित हो भक्ति।
रहे सदा एकान्त मन, विषयन मांहि विरक्ति।।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज् ज्ञानम् इति प्रोक्तम् , अज्ञानं यद् अतोऽन्यथा

11. कर चिन्तन अध्यात्म का, परमतत्व का ज्ञान।
सब में लख परमात्म को, मिटे सकल अज्ञान।।

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि, यज् ज्ञात्वाऽमृतम् अश्नुते ।
अनादिमत् परं ब्रह्म, न सत् तन् नासद् उच्यते ।१३.१२।

12. जो जानन के योग्य है, देता परमानन्द।
असत न सत उसको कहूँ, जो अनादि निर्द्वन्द्व।।

सर्वतःपाणिपादं तत् , सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल् लोके, सर्वम् आवृत्य तिष्ठति ।१३.१३।

13. सभी ओर कर, पद, नयन, सिर भी है सब ओर।
सभी लोक में व्याप्त जो, विश्वरूप चित चोर।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच् चैव, निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।१३.१४।

14. जाने इन्द्रिय विषय को, बिन इन्द्रिय संयोग।।
अनासक्त पालन करें, निर्गुण गुण का भोग।।

बहिर् अन्तश्च भूतानाम् , अचरं चरम् एव च ।
सूक्ष्मत्वात् तद् अविज्ञेयं, दूरस्थं चान्तिके च तत् ।१३.१५।

15. है बाहर भीतर वही, जीव चराचर मध्य।
अविज्ञेय भी सूक्ष्म से, दूर पास दृश्टव्य।।

अविभक्तं च भूतेषु, विभक्तम् इव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज् ज्ञेयं, ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।१३.१६।

16. भक्त, विभक्त दिखात जो, ब्रह्म नहीं कथनीय।
कर्ता, भर्ता, भोक्ता, हेतु जगत करणीय।।

ज्योतिषाम् अपि तज् ज्योतिस् , तमसः परम् उच्यते
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं, हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।१३.१७।

17. परम ज्योति माया परे, करती तम को दूर।
ज्ञाता, ज्ञेय, सुज्ञेय सह, सबके उर भरपूर।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं, ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय, मद्भावायोपपद्यते ।१३.१८।

18. इस प्रकार संक्षेप से, कहा ज्ञान अरु ज्ञेय।
भक्त सदा यह जान के, मुझे प्राप्त कर लेय।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव, विद्ध्य् अनादी उभाव् अपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृतिसंभवान् ।१३.१९।

19. है अनादि प्रकृती पुरुष, मिलत दिखे संसार।
रागद्वेष, त्रिगुणादि जग, इनका ही विस्तार।।

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः प्रकृतिर् उच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां, भोक्तृत्वे हेतुर् उच्यते ।१३.२०।

20. कारण कार्य उत्पत्ति में, प्रकृति कहाये हेतु।
वैसे ही जीवात्मा, सुख दुख की नरकेतु।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि, भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुण सङ्गोऽस्य, सदसद्योनिजन्मसु ।१३.२१।

21. स्थित होकर प्रकृति मे, भोगे सुख दुख द्वन्द्व।
ये ही कारण जनम के, योनि शुभाशुभ फंद।।

उपद्रष्टानुमन्ता च, भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्य् उक्तो, देहेऽस्मिन् पुरुषः परः

22. विद्यमान इस देह मे, भिन्न पुरुष सुन पार्थ।
साक्षी भर्ता भोक्ता, अनुमंता परमार्थ।।

य एवं वेत्ति पुरुषं, प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, न स भूयोऽभिजायते ।१३.२३।

23. जो जाने परमात्म के, गुण अरु प्रकृति किशोर।
कर्म करे कर्तव्य जो, जन्म न लहहि बहोर।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति, केचिद् आत्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन, कर्मयोगेन चापरे ।१३.२४।

24. कितने देखें ब्रहम को, सूक्ष्म बुद्धि धर ध्यान।
कितने कर्म व ज्ञान से, पाते पद निर्वाण।।

अन्ये त्व् एवम् अजानन्तः, श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्य् एव, मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।१३.२५।

25. दूसर करें उपासना, सुनकर के उपदेश।
श्रवणपरायण भव तरहिं, लेकर के संदेश।।

यावत् संजायते किंचित् , सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् , तद् विद्धि भरतर्षभ ।१३.२६।

26. हे भारत जड़ जंगम, जितने भी जग जीव।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ही, सबकी उत्पति नींव।।

समं सर्वेषु भूतेषु, तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्व् अविनश्यन्तं, यः पश्यति स पश्यति

27. नश्वर या हो अनश्वर, जग जीवों मे पार्थ।
रखता है समभाव को,दृष्टा वही यथार्थ।।

समं पश्यन् हि सर्वत्र, समवस्थितम् ईश्वरम् ।
न हिनस्त्य् आत्मनात्मानं, ततो याति परां गतिम्

28. सब में लख परमात्मा, एक भाव रख पार्थ।
नहीं नष्ट हो आपसे, परमगती को प्राप्त।।

प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानम् , अकर्तारं स पश्यति ।१३.२९।

29. कर्म प्रकृति से होत सब, कर्ता स्वयं न मान।
स्वयं आत्मकल्याणरत, दृष्टा वही महान।।

यदा भूतपृथग्भावम् , एकस्थम् अनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं, ब्रह्म संपद्यते तदा ।१३.३०।

30. सभी भूत संसार के, ईश्वर स्थित जान।
ब्रह्म सच्चिदानंदमय, जगविस्तार महान।।

अनादित्वान् निर्गुणत्वात् , परमात्मायम् अव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय, न करोति न लिप्यते ।१३.३१।

31. अविनाशी परमात्मा, आदि रहित पा देह।
निर्गुण रहे, न लिप्त हो, जान विगत सन्देह।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्याद् , आकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते ।१३.३२।

32. सर्वव्याप्त अरु सूक्ष्म नभ, लिप्त न होता पार्थ।
उसी तरह यह आत्मा, लिप्त न तन के साथ।।

यथा प्रकाशयत्य् एकः, कृत्स्नं लोकम् इमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं, प्रकाशयति भारत ।१३.३३।

33. हे अर्जुन ज्यों एक रवि, जग को देत प्रकाश।
वैसे ही यह आत्मा, तन का करे विभाष।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर् एवम् , अन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च, ये विदुर् यान्ति ते परम् ।१३.३४।

34. भेद क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का, भूत प्रकृति के साथ।
ज्ञान नयन से जानते, पाते ब्रह्म यथार्थ।।

" क्षेत्र–क्षणिक, जड़, नाशयुत, देह भ्रान्ति सविकार।
क्षेत्रपती, चैतन्य है, अविनाशी अविकार।।
दृष्टा रह कर जगत में, करता कर्म किशोर।
तेरहवें अध्याय का, सार यही चितचोर।13।"

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

१४. गुणत्रयविभागयोगः

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानां ज्ञानम् उत्तमम् ।
यज् ज्ञात्वा मुनयः सर्वे, परां सिद्धिम् इतो गताः ।१४.१।

1. कहता पुनि अर्जुन सुनो,जो सर्वोत्तम ज्ञान।
परमसिद्धि को पा गये, मुनिगण जिसको जान।।

इदं ज्ञानम् उपाश्रित्य, मम साधर्म्यम् आगताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते, प्रलये न व्यथन्ति च ।१४.२।

2. जिसे जानकर सृष्टि, लय, गुप्त भेद पहिचान।
जन्म मृत्यु, भय मुक्त वे, मम आश्रित मतिमान।।

मम योनिर् महद् ब्रह्म, तस्मिन् गर्भं दधाम्य् अहम्।
संभवः सर्वभूतानां, ततो भवति भारत ।१४.३।

3. मूलभूत मम प्रकृति ही, जीव गर्भ की हेतु।
जड़ चेतन संयोग से, भूतोत्पादन सेतु।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय, मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद् योनिर् , अहं बीजप्रदः पिता ।१४.४।

4. योनि अनेकों जगत की, प्रकृति मातृ निष्पाप।
सब में चेतन अंशमय, जगत पिता मैं आप।।

सत्त्वं रजस् तम इति, गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो, देहे देहिनम् अव्ययम् ।१४.५।

5. प्रकृती से उत्पन्न गुण, सत, रज, तम जो नाम।
अविनाशी जीवात्मा, तन से बंध्यो निकाम।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् , प्रकाशकम् अनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ ।१४.६।

6. निर्विकार निर्मल अनघ, देही परम प्रकाश।
बंधता सुख अरु ज्ञान के, अहंकार की पाश।।

रजो रागात्मकं विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन् निबध्नाति कौन्तेय, कर्मसङ्गेन देहिनम् ।१४.७।

7. राग रूप रज ऊपजे, तृष्णा अरु आसक्ति।
बंध्यो कर्मफल जीव यह, कैसे होय विरक्ति ।।

तमस् त्व् अज्ञानजं विद्धि, मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस् , तन् निबध्नाति भारत ।१४.८।

8. देह गुमानी तमोगुण, से मोहित अज्ञान।
आलस, नींद प्रमाद से, जीव बन्ध यह जान।।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति, रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानम् आवृत्य तु तमः, प्रमादे सञ्जयत्य् उत ।१४.९।

9. सत में सुख अनुभूति दे, रज दे अनुभव कर्म।
तम, प्रमाद में डूबकर, करता जीव अधर्म।।

रजस् तमश् चाभिभूय, सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव, तमः सत्त्वं रजस् तथा ।१४.१०।

10 बढ़े सतोगुण हीनकर, रज, तम केर प्रभाव।
वैसे ही रज, तम बढ़ें, अल्प अन्य दो भाव।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् , प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद् , विवृद्धं सत्त्वम् इत्य् उत ।१४.११।

11 जिस क्षण ही इस देह मे, बढ़ता ज्ञान विवेक।
जानो सत गुण बढ़ रहा, तीन गुणों मे एक।।

लोभः प्रवृत्तिर् आरम्भः, कर्मणाम् अशमः स्पृहा ।
रजस्य् एतानि जायन्ते, विवृद्धे भरतर्षभ ।१४.१२।

12. लोभ, कर्मरुचि, कामना, अरु अशान्ति हो जाय।
बढ़ा रजो गुण जानिये, जहं ये लक्षण पाय।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च, प्रमादो मोह एव च ।
तमस्य् एतानि जायन्ते, विवृद्धे कुरुनन्दन ।१४.१३।

13. अर्जुन हो अज्ञान, भ्रम, अरु प्रमाद यदि जान।
अति निद्रा तम वृद्धि है, अर्जुन सुन धर ध्यान।।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकान् , अमलान् प्रतिपद्यते ।१४.१४।

14. अन्त समय यदि देह में, सतगुण होय प्रधान।
उत्तम, निर्मल लोक पुनि, प्राप्त करे इन्सान।।

रजसि प्रलयं गत्वा, कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस् तमसि, मूढयोनिषु जायते ।१४.१५।

15. तजे देह रज वृद्धि में, जनमे नर तनु पाय।
मूढ़योनि, पशु, कीट हो, तम में जो मर जाय।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः, सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस् तु फलं दुःखम् , अज्ञानं तमसः फलम् ।१४.१६।

16. श्रेष्ठ कर्म फल सात्विकी, सुखयुत, ज्ञान विराग।
राजस दुःख, अज्ञान तम, देते हैं जस भाग।।

सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानं, रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो, भवतोऽज्ञानम् एव च ।१४.१७।

17. सत से उत्पति ज्ञान की, रज से लोभ बखान।
तम प्रमाद अरु मोह दे, हृदय भरे अज्ञान।।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः
जघन्यगुणवृत्तिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः ।१४.१८।

18. सत जाते हैं स्वर्ग को, रज नर, लोक प्रवीन।
तामस नीची योनि को, नरक जात अतिदीन।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं, यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति, मद्भावं सोऽधिगच्छति ।१४.१९।

19. कर्ता लख इन गुणन को,दृष्टा जिस क्षण पार्थ।
गुणातीत मोहि जानके, पाता परम यथार्थ।।

गुणान् एतान् अतीत्य त्रीन् , देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर् , विमुक्तोऽमृतम् अश्नुते ।१४.२०।

20. देह जनम के हेतु जो, देही तज गुण तीन।
जनम, जरा अरु मृत्यु, दुःख, करता पार प्रवीन।।

अर्जुन उवाच
कैर् लिङ्गैस् त्रीन् गुणान् एतान् , अतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस् , त्रीन् गुणान् अतिवर्तते ।१४.२१।

21. प्रभू गुणों के आचरण,लक्षण करहु बखान।
कैसे त्रिगुणातीत हों, करो उपाय बखान।।

श्री भगवान उवाच–

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च, मोहम् एव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि, न निवृत्तानि काङ्क्षति ।१४.२२।

22. ज्ञान, कर्म रुचि, अज्ञता, सत, रज, तम परिणाम।
द्वेष नहीं इच्छा नहीं, त्रिगुणातीत निकाम।।

उदासीनवद् आसीनो, गुणैर् यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्य् एव, योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।१४.२३।

23. उदासीन, विचलित नहीं, पाय गुणों का मेल।
ब्रह्म भाव देखत रहे, सत, रज, तम का खेल।।

समदुःखसुखः स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस् , तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।१४.२४।

24. सुख, दुख, मृद,सोना सभी, प्रिय अरु अप्रिय समान।
निन्दा, स्तुति सम रहें, गुणातीत तेहि जान।।

मानापमानयोस् तुल्यस् , तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः स उच्यते ।१४.२५।

25. शत्रु, मित्र जेहि एक से, मान और अपमान।
गुणातीत सब करत हैं, नहिं कर्ता अभिमान।।

मां च योऽव्यभिचारेण, भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान् समतीत्यैतान् , ब्रह्मभूयाय कल्पते ।१४.२६।

26. एकनिष्ठ मुझको भजे, लांघे त्रिगुण प्रभाव।
ब्रहम प्राप्ति के योग्य वह, है किशोर सतभाव।।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम् , अमृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य, सुखस्यैकान्तिकस्य च ।१४.२७।

27. हूँ आश्रय उस ब्रहम का, शाश्वत नित्यानन्द।
सबका नित आधार मैं, परम सच्चिदानन्द।।

"मन हांथी,मति महावत, आत्म तत्व आसीन।
संयम के अंकुश बिना,गज न होय आधीन।।
गुणत्रय योग विभाग यह, चौदहवां अध्याय।
कह किशोर अति प्रेम से, ऊँ नमःशिवाय।14।"

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

१५. पुरुषोत्तमयोगः

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् , अश्वत्थं प्राहुर् अव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस् तं वेद स वेदवित् ।१५.१।

1. जड़ जिसकी परमात्मा, शाखा ब्रह्मा मान।
पत्ते जिसके वेद हैं, जग पीपल पहिचान।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास् तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्य् अनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।१५.२।

2. गुण जल से शाखा बढे,तेहि से विषय प्रवाल।
नीचे ऊपर मध्य है, कर्म वासना जाल।।

न रूपम् अस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर् न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थम् एनं सुविरूढमूलम्
असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।१५.३।

3. अहं, वासनामय जड़ें, फैलें जो नर लोक।
दृढ़ विराग के शस्त्र से, काटो रहो अशोक।।

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तम् एव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।१५.४।

4. इसी पेंड़ की मूल में, छिपे ब्रह्म को खोज।
आदि पुरुष विस्तार सब, शरण रहो हर रोज।।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर् विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्
गच्छन्त्य् अमूढाः पदम् अव्ययं तत् ।१५.५।

5. मान,मोह को नष्ट कर, जीत संग का दोष।
द्वन्द्व मिटे, अव्यय मिले, मन किशोर संतोष।।

न तद् भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः ।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद् धाम परमं मम ।१५.६।

6. रवि, शशि, अनल प्रकाश नहिं, स्वप्रकाश मम धाम।
पाकर जग भटकन मिटे, जीव लेय विश्राम।।

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति ।१५.७।

7. देह मध्य मम अंश रह, अविनाशी अविकार।
पंचेन्द्रिय अरु मन छठा, आकर्षण का सार।।

शरीरं यद् अवाप्नोति, यच् चाप्य् उत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर् गन्धान् इवाशयात् ।१५.८।

8. यथा गन्ध को वायु ले, दूर देश से लाय।
वैसे ही जीवात्मा, मन इन्द्रिय ले जाय।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च, रसनं घ्राणम् एव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं, विषयान् उपसेवते ।१५.९।

9. जिस तन में यह जात है, मन को रखता साथ।
नाक, कान, आंखें, त्वचा, विषय भोगता पार्थ।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि, भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।१५.१०।

10. प्रयाण भोग, स्थिति समय, देह रहे या प्रांण।
मूढ़ नहीं जानें इसे, ज्ञानी जान प्रमाण।।

यतन्तो योगिनश्चैनं, पश्यन्त्य् आत्मन्य् अवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्य् अकृतात्मानो, नैनं पश्यन्त्य् अचेतसः

11. देखें ज्ञानी यत्न कर, निज में स्थित आत्म।
अज्ञानी कर यत्न बहु, नहि देखहिं परमात्म।।

यद् आदित्यगतं तेजो, जगद् भासयतेऽखिलम् ।
यच् चन्द्रमसि यच् चाग्नौ, तत् तेजो विद्धि मामकम् ।१५.१२।

12 . तेज जो रहता सूर्य में, जग का करे प्रकाश।
चंद्र अगिनि का तेज भी, मेरा ही आभास।।

गाम् आविश्य च भूतानि, धारयाम्य् अहम्ओजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः, सोमो भूत्वा रसात्मकः ।१५.१३।

13. निज बल से महि में प्रविश, धारण करता जीव।
रसयुत शशि के रुप में, औषधि पुष्टि सजीव।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां देहम् आश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः, पचाम्य् अन्नं चतुर्विधम् ।१५.१४।

14. मैं वैश्वानर देह बिच,शक्ति स्रोत बनजात।
प्राणापान समान बन, सबकौ अन्न पचात।।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर् ज्ञानम् अपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैर् अहम्एव वेद्यो
वेदान्तकृद् वेदविद् एव चाहम् ।१५.१५।

15. मैं ही सबके हृदयबिच, स्थित अन्तर्याम।
स्मृति, विस्मृति, अपोहन, मेरे ही आयाम।।
क्षर, अक्षर के ज्ञान का, यह विज्ञान प्रकाश।
देह नाश हो जात पर, देही का नहिं नाश।।

द्वाव् इमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।१५.१६।

16. दो प्रकार के जग पुरुष, नाशवान अविनाश।
नशवान देही सभी, जीव न होत विनाश।।

उत्तमः पुरुषस् त्व् अन्यः, परमात्मेत्य् उदाहृतः ।
यो लोकत्रयम् आविश्य, बिभर्त्य् अव्यय ईश्वरः

17. इन दोनों से पृथक है, परम आत्म ले जान।
हो प्रविष्ट तिहुँ लोक के, धारक पोषक मान।।
जो त्रिलोक धारण करत, उत्तम पुरुष सो अन्य।
पुरुषोत्तम पालहिं जगत, भजहिं जीव वे धन्य।।

यस्मात् क्षरम् अतीतोऽहम् , अक्षराद् अपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः पुरुषोत्तमः ।१५.१८।

18. क्षर अरु अक्षर से परे, श्रेष्ठ मान मोहि पार्थ।
लोक वेद सब जानते, पुरुषोत्तम निहितार्थ।।

यो माम् एवम् असंमूढो, जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद् भजति मां, सर्वभावेन भारत ।१५.१९।

19. परम पुरुष जाने मुझे, ज्ञानी जो धर ध्यान।
सब प्रकार मम ध्यान कर, हो सर्वज्ञ सुजान।।

इति गुह्यतमं शास्त्रम् , इदम् उक्तं मयाऽनघ ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् , कृतकृत्यश्च भारत ।१५.२०।

20. गुप्त रहस्य सुशास्त्र का, यह भारत निष्पाप।
इसे जान मतिमान नर, हो कृतकृत्य प्रताप।।

"तम को जड़ से मेटिये, रजकर सत् की ओर।
पुरुषोत्तम को सौंपकर, अपनी जीवन डोर।।
यह पुरुषोत्तम योग ही, पन्द्रहवॉ अध्याय।
कह किशोर अति प्रेम से,ऊँ नमः कृष्णाय।15।"

अथ षोडशोऽध्यायः

१६. दैवासुरसंपद्विभागयोगः

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर् , ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्यायस् तप आर्जवम् ।१६.१।

1. दैवी सम्पति प्राप्त जो,लो उनको पहिचान।
दान, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, परहित रत हरि ध्यान।।

अहिंसा सत्यम् अक्रोधस् , त्यागः शान्तिर् अपैशुनम् ।
दया भूतेष्व् अलोलुप्त्वं, मार्दवं ह्रीर् अचापलम् ।१६.२।

2. त्याग, सत्य, चितशांत हो, क्रोध न हिंस प्रहार।
लोभशून्य कोमल ह्रदय, मृदुता मन में धार।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचम् , अद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीम् , अभिजातस्य भारत ।१६.३।

3. तेज, क्षमा, शुचि, धीरता, द्रोह रहित बिन मान।
लक्षण दैवी पुरुष के, अर्जुन सुन धर ध्यान।।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः पारुष्यम् एव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य, पार्थ संपदम् आसुरीम् ।१६.४।

4. दम्भ, दर्प, अभिमान अरु, क्रोध कठिन रह भाव।
ये लक्षण अज्ञान के, जानौ असुर स्वभाव।।

दैवी संपद् विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीम् , अभिजातोऽसि पाण्डव ।१६.५।

5. दैवी सम्पत्ति मोक्ष हित, होत आसुरी बन्ध।
नहीं शोक तू पार्थ कर, दैवीयुत निर्बन्ध।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् , दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त, आसुरं पार्थ मे शृणु ।१६.६।

6. लोकभूत प्रकृती द्विविध, दैवी आसुरि मान।
जो दैवी सो जान ली, सुन आसुरी सुजान।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, जना न विदुर् आसुराः ।
न शौचं नापि चाचारो, न सत्यं तेषु विद्यते ।१६.७।

7. अनुचित उचित न जानते, जिनका असुर स्वभाव।
शुद्धि आचरण हीन वे, भरे झूठ से भाव।।

असत्यम् अप्रतिष्ठं ते, जगद् आहुर् अनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं, किम् अन्यत् कामहैतुकम् ।१६.८।

8. निराधार मानें जगत, ईश्वर को झुठलाय।
नरनारी संयोग ही, जीव धर्म बतलाय।।

एतां दृष्टिम् अवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्य् उग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः ।१६.९।

9. मिथ्याचारी वे पुरुष, निज स्वभाव कर नाश।
क्रूर करें जग का अहित, देते सबको त्रास।।

कामम् आश्रित्य दुष्पूरं, दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वाऽसद्ग्राहान् , प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः

10. दम्भी,अभिमानी रहें, प्रिय, प्रमाद अरु काम।
भ्रष्ट आचरण मोहवश, ऐसे व्यक्ति तमाम।।

चिन्ताम् अपरिमेयां च, प्रलयान्ताम् उपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा, एतावद् इति निश्चिताः ।१६.११।

11. जन्म से लेके मरण तक, फंसा सोच के फन्द।
शिश्नोदर की पूर्ति ही, मानें सुख का कन्द।।

आशापाशशतैर् बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थम् , अन्यायेनार्थसञ्चयान् ।१६.१२।

12. बंध के आशा पाश नर,काम,क्रोध से युक्त।
विषय भोग अन्याय कर, धन संग्रह नर सुस्त।।

इदम् अद्य मया लब्धम् , इमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदम् अस्तीदम् अपि मे, भविष्यति पुनर् धनम् ।१६.१३।

13. आज किया सो पा लिया, कल पाऊँगा और।
यह धन मेरे पास है, वह धन होगा मोर।।

असौ मया हतः शत्रुर् , हनिष्ये चापरान् अपि ।
ईश्वरोऽहम् अहं भोगी, सिद्धोऽहं बलवान् सुखी

14. मारा मैंने शत्रु को, अन्यों को दूँ मार।
मैं ईश्वर ऐश्वर्ययुत्, सिद्ध, सुखी सरकार।।

आढ्योऽभिजनवान् अस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्य् अज्ञानविमोहिताः ।१६.१५।

15. मैं कुलीन, बहु कुटुम्बी, और न मो सम आन।
यज्ञ, दान, आनन्द का, भोक्ता, झूंठा मान।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ ।१६.१६।

16. इस प्रकार हो भ्रमित चित्,मोह जाल फंस जात।
कामी, विषयी हो पतित, घोर नरक गिर जात।।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा, धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस् ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।१६.१७।

17. श्रेष्ठ समझ कर स्वयं को, धन, यश, मद में चूर।
पाखण्डी, तप, यज्ञ रत, धर्म से कोसों दूर।।

अहंकारं बलं दर्पं, कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
माम् आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।१६.१८।

18. अहंकार, बल, दर्प सह, काम,क्रोध से लिप्त।
मुझसे करते द्वेष नित, परनिन्दक जो भक्त।।

तान् अहं द्विषतः क्रूरान् , संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्य् अजस्रम् अशुभान् , आसुरीष्व् एव योनिषु ।१६.१९।

19. अस पापी नर अधम जो, परनिन्दक संसार।
असुर योनि में डालता, ऐसों को बहुबार।।

आसुरीं योनिम् आपन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि ।
माम् अप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्य् अधमां गतिम्

20. जन्म–जन्म से पा रहे, असुर योनि को पार्थ।
नहीं प्राप्त होते मुझे, जो नहिं जान यथार्थ।।

त्रिविधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनम् आत्मनः ।
कामः क्रोधस् तथा लोभस् , तस्माद् एतत् त्रयं त्यजेत्

21. काम क्रोध अरु लोभ सुन, तीन नरक के द्वार।
आत्मनाश दें अधोगति, कर इसका प्रतिकार।।

एतैर् विमुक्तः कौन्तेय, तमोद्वारैस् त्रिभिर् नरः ।
आचरत्य् आत्मनः श्रेयस् , ततो याति परां गतिम् ।१६.२२।

22. इन तीनों से मुक्त नर, करे आचरण जोय।
वे ही पाते श्रेष्ठ गति, सुनो सखा कौन्तेय।।

यः शास्त्रविधिम् उत्सृज्य, वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिम् अवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम् ।१६.२३।

23. छोंड़ शास्त्र विधि जो करे, स्वेच्छाचारी कृत्य।
सिद्ध परमपद या सुखी, होत न नर वह सत्य।।
तस्माच् छास्त्रं प्रमाणं ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं, कर्म कर्तुम् इहार्हसि ।१६.२४।

24. पार्थ! साधना सिद्धि हित, केवल शास्त्र प्रमाण।
शास्त्र कही विधि से किये, कर्म करें कल्याण।।

"दया, प्रेम, संतोष गुण, दैवी तत् उद्भूत।
मन मालिक होकर बने, आतम के तद्रूप।।
दैव असुर सम्पत्तिमय, सोलहवां अध्याय।
ऊँ नमः पार्थाय कह, ऊँ नमः शिवाय।16।"

अथ सप्तदशोऽध्यायः

१७. श्रद्धात्रयविभागयोगः

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिम् उत्सृज्य, यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण, सत्त्वम् आहो रजस् तमः

1. श्रद्धा से पूजे अगर, तज शास्त्रोक्त विधान।
सात्विक, राजस, तामसी, क्या निष्ठा भगवान।।

श्रीभगवानुवाच
त्रिविधा भवति श्रद्धा, देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव, तामसी चेति तां शृणु ।१७.२।

2. नर स्वभाव से होत है, श्रद्धा तीन प्रकार।
सत, रज, तम कहते सुनो, अर्जुन कहूं विचार।।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो, यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।१७.३।

3. अंतस के अनुरूप ही, श्रद्धा हो कौन्तेय।
जिसकी जैसी आस्था, उसका वैसा प्रेय।।

यजन्ते सात्त्विका देवान् , यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान् भूतगणांश् चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः

4. सात्विक पूजें देव को, राजस राक्षस यक्ष।
तामस भूतन प्रेत को, समझ सभी तू पक्ष।।

अशास्त्रविहितं घोरं, तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ।१७.५।

5. करते हैं जो कठिन तप, शास्त्र वचन को त्याग।
दम्भी, कामी जानिये, अहंकारयुत राग।।

कर्षयन्तः शरीरस्थं, भूतग्रामम् अचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं, तान् विद्ध्य् आसुरनिश्चयान् ।१७.६।

6. क्लेश देत हैं देह को, पंचभूत सह राव।
देह न देही को गने, जानो असुर स्वभाव।।

आहारस् त्व् अपि सर्वस्य, त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस् तपस् तथा दानं, तेषां भेदम् इमं शृणु ।१७.७।

7. जस अहार है त्रिविध विध, तस मख, तप अरु दान।
भेद कहूँ समझाय के, ले विधिवत तू जान।।

आयुःसत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या, आहाराः सात्त्विकप्रियाः

8. सात्विक वह आहार जो, बल अरु बुद्धि बढ़ाय।
सुख सरसावै रसमयी, उर आनंद समाय।।

कट्वम्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा, दुःखशोकामयप्रदाः ।१७.९।

9. कड़वे, खट्टे, लवण युत, गरम, तीक्ष्ण अरु रूख।
जलन, रोग, चिन्ताजनक, राजस जन प्रिय भूख।।

यातयामं गतरसं, पूति पर्युषितं च यत्
उच्छिष्टम् अपि चामेध्यं, भोजनं तामसप्रियम् ।१७.१०।

10. बासी, गतरस, गन्धयुत, अधपक, जूंठ, अपवित्र।
ऐसे भोजन तामसी, खाते हैं सुन मित्र।।

अफलाकाङ्क्षिभिर् यज्ञो, विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यम् एवेति मनः, समाधाय स सात्त्विकः ।१७.११।

11. फल आशा से रहित नर, समझ कर्म कर्तव्य।
यज्ञ सात्विकी शास्त्रविध, पूर्ण करे मंतव्य।।

अभिसन्धाय तु फलं, दम्भार्थम् अपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ, तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।१७.१२।

12. दम्भ और फल कामना, सहित यज्ञ कर जोय।
कह किशोर ऐसे पुरुष, राजस श्रेणी होय।।

विधिहीनम् असृष्टान्नं, मन्त्रहीनम् अदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं, तामसं परिचक्षते ।१७.१३।

13. अन्नदान बिन मंत्र के, शास्त्र विधी से हीन।
बिन श्रद्धा अरु दक्षिणा, तामस मख कह दीन।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञ-पूजनं शौचम् आर्जवम् ।
ब्रह्मचर्यम् अहिंसा च, शारीरं तप उच्यते ।१७.१४।

14. देव, गुरूजन वन्दना, सरल शुद्ध मन काय।
ब्रह्मचर्य व्रत अहिंसा, तप दैहिकी कहाय ।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते ।१७.१५।

15. अनुद्वेग कर हित बचन, भाषण सत परमान।
वेद पठन, पाठन जपन, वाचिक तप पहिचान।।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं, मौनम् आत्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिर् इत्य् एतत् , तपो मानसम् उच्यते ।१७.१६।

16. शान्त भाव रख, मन मुदित, मौन रखे चित बद्ध।
मन के हैं सब तप सुनो, भाव रहे सब शुद्ध।।

श्रद्धया परया तप्तं, तपस् तत् त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर् युक्तैः, सात्त्विकं परिचक्षते

17. बिना भोग की चाह के, श्रद्धात्रय तप लीन।
ऐसे तप की जानिये, श्रेणी सत्व प्रवीन।।

सत्कारमानपूजार्थं, तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तद् इह प्रोक्तं, राजसं चलम् अध्रुवम् ।१७.१८।

18. करते निज सत्कार को, पूजा हित अभिमान।
दम्भ हेतु तप राजसी, देत क्षणिक फलजान।।

मूढग्राहेणात्मनो यत् , पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा, तत् तामसम् उदाहृतम् ।१७.१९।

19. मन, वाणी अरु देह को, पीड़ित कर अनजान।
पर अनहित के हेतु जो, तामस श्रेणी मान।।

दातव्यम् इति यद् दानं, दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च, तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।१७.२०।

20. देत पात्र को दान जो, देश काल पहिचान।
प्रतिफल की आशा नहीं, दान सात्विकी मान।।

यत् तु प्रत्युपकारार्थं, फलम् उद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं, तद् दानं राजसं स्मृतम् ।

21. प्रतिफल की आशा सहित, अथवा निज उपकार।
मजबूरी का दान जो, राजस बिन आधार।।

अदेशकाले यद् दानम् , अपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतम् अवज्ञातं, तत् तामसम् उदाहृतम् ।१७.२२।

22. बिन सत्कार अयोग्य को, करे घृणा सह दान।
देश काल के ध्यान बिन, तामस दान बखान।।

ॐ तत् सद् इति निर्देशो, ब्रह्मणस् त्रिविधः स्मृतः
ब्राह्मणास् तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः पुरा

23. ऊँ तत् सत् यह तीन हैं,परब्रह्म के रूप।
है अनादि, अक्षर यही, श्रुति, द्विज, मख अनुरूप।।

तस्माद् ओम् इत्य् उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः, सततं ब्रह्मवादिनाम् ।१७.२४।

24. ऊँ साथ प्रारम्भ हों, यज्ञ, दान, तप कर्म।
शास्त्रविधी से वेदवित, कर्म करें यह मर्म।।

तद् इत्य् अनभिसंधाय, फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः, क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः

25. ब्रह्मरूप तत् बोलकर, करे यज्ञ, तप, दान।
फल की इच्छा छोंड़कर, करे मोक्ष हित काम।।

सद्भावे साधुभावे च, सद् इत्य् एतत् प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।१७.२६।

26. साधुभाव सद्भाव हित, सत् प्रयुक्त हो पार्थ।
उत्तम जो भी कर्म हो, उसमे भी सत् साथ।।

यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः सद् इति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं, सद् इत्य् एवाभिधीयते ।१७.२७।

27. यज्ञ, दान, तप की दशा, सत् कहलाती पार्थ।
ऊं तत्,सत्,युत कर्म सब, शिवस्वरूप परमार्थ।।

अश्रद्धया हुतं दत्तं, तपस् तप्तं कृतं च यत् ।
असद् इत्य् उच्यते पार्थ, न च तत् प्रेत्य नो इह

28. असत् जान श्रद्धा बिना, हवन, किया, तप, दान।
लोक और परलोक में, कहीं न हो कल्याण।।

" धर्म और अध्यात्म के, उतरो यदि मैदान।
हरि ऊँ तत् सत् वाक्य पर, हो किशोर का ध्यान।।

श्रद्धा त्रयी विभागमय, सत्रहवां अध्याय।
हरि ऊँ तत्,सत्,तत्,सत्, ऊँ नमः कृष्णाय।17।"

अथ अष्टादशोऽध्यायः

१८. मोक्षसंन्यासयोगः

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो, तत्त्वम् इच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक् केशिनिषूदन ।१८.१।

1. हृषीकेश केशव प्रभू,महाबाहु भगवान।
त्याग और संन्यास का, करिये सार बखान।।

श्रीभगवानुवाच
काम्यानां कर्मणां न्यासं, संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं, प्राहुस् त्यागं विचक्षणाः ।१८.२।

2. काम्य कर्म का त्याग ही, है संन्यास महान।
कुछ कहते फल त्याग ही,संन्यासी पहिचान।।

त्याज्यं दोषवद् इत्य् एके, कर्म प्राहुर् मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यम् इति चापरे ।१८.३।

3. सभी कर्म हैं दोषयुत, त्याज्य कहें मतिमान।
अपर कहें नहिं त्याज्य हैं, यज्ञ,कर्म, तप, दान।।

निश्चयं शृणु मे तत्र, त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।१८.४।

4. पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन सुनो, पहले त्याग अधार।
सत, रज, तम के भेद से, होता तीन प्रकार।।

यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं कार्यम् एव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्

5. यज्ञ, दान, तप तीन यह, करना मानव धर्म।
प्राणी को पावन करैं, त्याज्य नहीं ये कर्म।।

एतान्य् अपि तु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च
कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं मतम् उत्तमम् ।१८.६।

6. कर्म करो तुम त्यागकर, फलासक्ति अभिमान।
उत्तम मत मेरा यही, अर्जुन सुन धर ध्यान।।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात् तस्य परित्यागस् , तामसः परिकीर्तितः ।। १८.८७।

7. नहीं उचित है त्याग सुन, नित्य कर्म का पार्थ।
जो करते यह मोहवश, तामस जान यथार्थ।।

दुःखम् इत्येव यत् कर्म, कायक्लेशभयात् त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं, नैव त्यागफलं लभेत् ।।१८.८।

8. दुःख के कारण कर्म ये, देह कष्ट जो देय।
त्याग करे यह जानकर, राजस हैं कौन्तेय।।

कार्यम् इत्येव यत् कर्म, नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव, स त्यागः सात्त्विको मतः ।।

9. नियत कर्म कर्तव्य है, करे त्याग फल संग।
सात्विक कहलाता सुनो, कह किशोर मन रंग।।

न द्वेष्ट्य् अकुशलं कर्म, कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो, मेधावी छिन्नसंशयः ।१८.१०।

10. द्वेष न अकुशल कर्म से,नहीं कुशल से राग।
सतोगुणी, संशय रहित, यह ही सच्चा त्याग।।

न हि देहभृता शक्यं, त्यक्तुं कर्माण्य् अशेषतः ।
यस् तु कर्मफलत्यागी, स त्यागीत्य् अभिधीयते ।।

11. तज न सके तन से कभी,सभी कर्म को पार्थ।
करे कर्मफल त्याग जो, त्यागी वही यथार्थ।।

अनिष्टम् इष्टं मिश्रं च, त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्य् अत्यागिनां प्रेत्य, न तु संन्यासिनां क्वचित् ।।

12. भला बुरा मिश्रित मिले, फल जो तीन प्रकार।
पर फल त्यागी जो पुरुष, उन्हें नहीं फल भार।।

पञ्चैतानि महाबाहो, कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि, सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।।

13. पांच हेतु वेदान्त कह,करें सिद्ध सब कर्म।
उनको तुम मुझसे सुनो, अति विशिष्ट यह मर्म।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता, करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा, दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।१८.१४।

14. अधिष्ठान कर्ता करण, चेष्टा विविध प्रकार।
हेतु पांचवां दैव है, पार्थ कर्म का सार।।

शरीरवाङ्मनोभिर् यत् , कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा, पञ्चैते तस्य हेतवः ।१८.१५।

15. मन वाणी अरु देह से, कर्म शास्त्र अनुकूल।
अथवा हों प्रतिकूल जो, ये ही कारण मूल।।

तत्रैवं सति कर्तारम् , आत्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्य् अकृतबुद्धित्वान् , न स पश्यति दुर्मतिः ।१८.१६।

16. समस्त कर्म के हेतु को,नहिं जाने अज्ञान।
कर्ता माने आत्म को , मलिन मती इनसान।।

यस्य नाहंकृतो भावो, बुद्धिर् यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल् लोकान् , न हन्ति न निबध्यते ।।

17. ना कर्ता का अह्म हो, विषय न लिप्त सुजान।
सभी लोक को मार दे, तो भी पाप न मान।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता, त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति, त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।१८.१८।

18. ज्ञाता ज्ञान सुज्ञेय त्रय, प्रेरक कर्म कहाय।
करण कर्म कर्ता त्रिविध, संग्रह कर्म सुहाय।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च, त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने, यथावच् छृणु तान्य् अपि ।।

19. ज्ञान कर्म कर्ता त्रिविध, भी हैं तीन प्रकार।
भलीभांति गुण भेद सुन, सांख्य शास्त्र अनुसार।।

सर्वभूतेषु येनैकं, भावम् अव्ययम् ईक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु, तज् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।२०।

20. भौतिक रूप अनेक पर, आतम सब में एक।
सब में जो समभाव लख, सात्विक ज्ञान विवेक।।

पृथक्त्वेन तु यज् ज्ञानं, नानाभावान् पृथग्विधान्
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु, तज् ज्ञानं विद्धि राजसम् ।२१।

21. सभी प्राणियों में अगर, भिन्न भाव जो देख।
उनमें राजस ज्ञान की, ह्रदय पड़ी है रेख।।

यत् तु कृत्स्नवद् एकस्मिन् , कार्ये सक्तम् अहैतुकम्
अतत्त्वार्थवद् अल्पं च, तत् तामसम् उदाहृतम् ।२२।

22. इस शरीर से भिन्न नहिं, आत्म तत्व कछु आन।
तुच्छ, अहैतुक, निरर्थक, है यह तामस ज्ञान।।

नियतं सङ्गरहितम् , अरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म, यत् तत् सात्त्विकम् उच्यते ।२३।

23. शास्त्र कहें सो कर्म हों, नहिं कर्ता अभिमान।
राग–द्वेष बिन हो रहे, कर्म सात्विकी जान।।

यत् तु कामेप्सुना कर्म, साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं, तद् राजसम् उदाहृतम् ।१८.२४।

24. लेके फल की कामना, कष्ट साध्य जगजान।
अहंकार के साथ वह, कर्म राजसी मान।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसाम् , अनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहाद् आरभ्यते कर्म, यत् तत् तामसम् उच्यते ।२५।

25. बिन सोचे परिणाम अरु, हिंसा हानि विचार।
कर्म करें अज्ञानवश, तामस कह संसार।।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्धयसिद्धयोर् निर्विकारः, कर्ता सात्त्विक उच्यते ।२६।

26. बिन फल कर्ता भाव के, उत्साही मन धीर।
सिद्धि, असिद्धि न हर्ष दुःख, सात्विक कर्ता वीर।।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर् , लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता, राजसः परिकीर्तितः ।२७।

27. लोभ राग फल हेतु का, करत कर्म जो जान।
हर्ष, शोक में लिप्त जो, राजस कर्ता मान।।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः, शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च, कर्ता तामस उच्यते ।१८.२८।

28. चंचल मति मद आलसी, और प्रवंचक धूर्त।
दीर्घसूत्र शोकार्त जो, कर्ता तामस मूर्त।।

बुद्धेर् भेदं धृतेश् चैव, गुणतस् त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानम् अशेषेण, पृथक्त्वेन धनंजय ।२९।

29. बुद्धि और धृति के सुनो,गुण जो तीन प्रकार।
पृथक–पृथक विस्तार से, विदित सकल संसार।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति, बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।३०।

30. प्रवृति–निवृति को जानती, जाने कार्य अकार्य।।
मोक्ष बन्ध भय अभय को,वह सदबुद्धी आर्य।।

यया धर्मम् अधर्मं च, कार्यं चाकार्यम् एव च ।
अयथावत् प्रजानाति, बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।३१।

31. करने योग्य अयोग्य क्या, नहीं धर्म पहिचान।
जो यथार्थ को न लखे, बुद्धि राजसी जान।।

अधर्मं धर्मम् इति या, मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च, बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।१८.३२।

32. जाने धर्म अधर्म को, सभी विषय विपरीत।
बुद्धि तामसी वह सुनो, पार्थ मान मम मीत।।

धृत्या यया धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या, धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।३३।

33. ध्यानयोग स्थिर रहे, धारे मन अरु प्रांण।
छोंड़ वासना प्रभु विरत, धृति सात्विकी महान।।

यया तु धर्मकामार्थान् , धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी, धृतिः सा पार्थ राजसी ।३४।

34. फलासक्ति युत कर्म जो, धर्म, अर्थ अरु काम।
किशोर कहे धृति राजसी, पार्थ उसी का नाम।।

यया स्वप्नं भयं शोकं, विषादं मदम् एव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा, धृतिः सा पार्थ तामसी ।३५।

35. निद्रा, भय अरु सोच, दुःख, पागलपन के भाव।
तामस धारण शक्ति का, जानो पूर्ण प्रभाव।।

सुखं त्व् इदानीं त्रिविधं, शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद् रमते यत्र, दुःखान्तं च निगच्छति ।३६।

36. सुख अब तीन प्रकार के, सुनो पार्थ धर ध्यान।
जिसके अति अभ्यास से, होय सुखी दुःख हान।।

यत् तद् अग्रे विषम् इव, परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तम् , आत्मबुद्धिप्रसादजम् ।।

37. पहले दुःख दायी लगे, अन्त सुधा परिणाम।
आत्म प्रसाद प्रसन्न मन,सात्विक सुख के काम।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद् , यत् तद् अग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषम् इव, तत् सुखं राजसं स्मृतम् ।३८।

38. विषयेन्द्रिय संयोग से, जो सुख पड़े दिखाय।
प्रथम सुधा विष अन्त में, राजस सुख कहलाय।।

यद् अग्रे चानुबन्धे च, सुखं मोहनम् आत्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं, तत् तामसम् उदाहृतम् ।३९।

39. आलस, नींद प्रमाद से,जो सुख सदृश दिखात।
मोह भोग परिणाम में, तामस सुख कहलात।।

न तद् अस्ति पृथिव्यां वा, दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर् मुक्तं, यद् एभिः स्यात् त्रिभिर् गुणैः ।।

40. देवलोक, आकाश, भू, प्रांणि मात्र है जोय।
सभी प्रभावित त्रिगुण से, जस गुण सो तस होय।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां, शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर् गुणैः ।४१।

41. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अरु, शूद्र कहे जे चार।
जैसा जिसका काम सब, गुण स्वभाव अनुसार।।

शमो दमस् तपः शौचं, क्षान्तिर् आर्जवम् एव च ।
ज्ञानं विज्ञानम् आस्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।४२।

42. शम, दम, तप, शुचि, सरलता, क्षमा, ज्ञान, विज्ञान।
अध्ययन, अध्यापन, मनन, ब्रहम कर्म पहिचान।।

शौर्यं तेजो धृतिर् दाक्ष्यं, युद्धे चाप्य् अपलायनम् ।।
दानम् ईश्वरभावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।४३।

43. शौर्य, धैर्य, चातुर्य अरु तेज, पराक्रम, दान।
स्वाभिमान सह युद्धप्रिय, तिनको क्षत्रिय जान।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं, वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।१८.४४।

44. गोरक्षा, व्यापार, कृषि, जानहु वैश्य स्वभाव।
सेवा के सब कर्म कर, वरन शूद्र कहलाव।।

स्वे स्वे कर्मण्य् अभिरतः, संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं, यथा विन्दति तच् छृणु ।४५।

45. अपने अपने कर्मरत, पाते सिद्धि सुजान।
जस पावें तस मैं कहूँ, सुनो पार्थ धर ध्यान।।

यतः प्रवृत्तिर् भूतानां, येन सर्वम् इदं ततम् ।
स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य, सिद्धिं विन्दति मानवः ।४६।

46. जिनसे पैदा सब जगत, व्याप्त रहा जिस माह।
पूज स्वाभाविक कर्म से, सिद्धि मिले नरनाह।।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः, परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म, कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम् ।४७।

47. यदि सदोष निज धर्म का, है विधिवत अभ्यास।
तो स्वधर्म के कर्म में, पाप न देता त्रास।।

सहजं कर्म कौन्तेय, सदोषम् अपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण, धूमेनाग्निर् इवावृताः ।१८.४८।

48. दोषयुक्त भी न तजें, कर्म सहज सुन पार्थ।
सकल कर्म में दोष जस, धुंआ अग्नि के साथ।।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र, जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां, संन्यासेनाधिगच्छति ।४९।

49. निरासक्त सर्वत्र मति, विजयी मन कौन्तेय।
ज्ञान मार्ग से प्राप्त कर, निष्काम सिद्धि पाथेय।।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय, निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।५०।

50. ज्ञान योग निष्ठा यही, मिले ब्रह्म का भाव।
उसको सुन संक्षेप से, पराकाष्ठा पाव।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो, धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन् विषयांस् त्यक्त्वा, रागद्वेषौ व्युदस्य च ।।

51. शुद्ध सात्विकी बुद्धि से, राग–द्वेष कर अंत।
कोलाहल से दूर हो, सेवहिं जा एकंत।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं, वैराग्यं समुपाश्रितः ।१८.५२।

52. अहंकार, बल, परिग्रह, काम, क्रोध कर त्याग।
निर्मल, शान्ति स्वरूप नर, ब्रह्म रूप बड़भाग।।

अहंकारं बलं दर्पं, कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो, ब्रह्मभूयाय कल्पते ।५३।

53. काम, क्रोध, ममता रहित, शान्तियुक्त चित पार्थ।
ध्यानयोग में निरत नर, होत ब्रहम के साथ।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा, न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु, मद्भक्तिं लभते पराम् ।१८.५४।

54. मन प्रसन्न, रह ब्रह्म रत, शोक करे न चाह।
समदर्शी सब भूत प्रति, भक्त लहें नरनाह।।

भक्त्या माम् अभिजानाति, यावान् यश् चास्मि तत्त्वतः।
ततो माम् तत्त्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम् ।१८.५५।

55. जान मुझे उस भक्ति से, जो हूँ जैसा रूप।
समझ तत्व से तत्समय, पाओ परम स्वरूप।।

सर्वकर्माण्य् अपि सदा, कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादाद् अवाप्नोति, शाश्वतं पदम् अव्ययम् ।५६।

56. मम आश्रय ले कर्म कर, पा पद परम अनूप।
सत्य, सनातन, शाश्वत, नर है मम अनुरूप।।

चेतसा सर्वकर्माणि, मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगम् उपाश्रित्य, मच्चित्तः सततं भव ।५७।

57. अर्पण कर सब कर्म को, अवलम्बन कर योग।
बुद्धियोग से चित्त दे, मुझको पाते लोग।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात् तरिष्यसि ।
अथ चेत् त्वम् अहंकारान् , न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।

58. मुझ में चित मम कृपा से, सहज पार सब कष्ट।
वचन न माने दम्भवश, सो हो जाते नष्ट।।

यद् अहंकारम् आश्रित्य, न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस् ते, प्रकृतिस् त्वां नियोक्ष्यति ।।

59. नहीं युद्ध मैं करूंगा, रहा अहम वश मान।
मिथ्या निश्चय है तेरा, प्रकृति लड़े तव जान।।

स्वभावजेन कौन्तेय, निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन् मोहात् , करिष्यस्य् अवशोऽपि तत् ।।

60. अर्जुन करता मोहवश, युद्ध हेतु इन्कार।
है स्वभाव से बंधा सो, कर लेगा स्वीकार।।

ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया ।६१।

61. अर्जुन! उर में बैठकर, चला रहा सब ईश।
सभी यंत्रवत् घूमते, क्या दुःख कैसी टीस।।

तम् एव शरणं गच्छ, सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।६२।

62. सब प्रकार से शरण गह, उसकी ही तुम पार्थ।
ईश कृपा से ही मिले, तुमको शान्ति यथार्थ।।

इति ते ज्ञानम् आख्यातं, गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतद् अशेषेण, यथेच्छसि तथा कुरु ।६३।

63. गोपनीय से गुह्य अति, ज्ञान कहा समझाय।
भलीभांति सुविचार कर, करो वही जो भाय।।

सर्वगुह्यतमं भूयः, शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढम् इति, ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।६४।

64. गोपनीय जो परम अति, अरु रहस्य मम तात।
अतिशय प्रिय हो तुम मुझे, सो सुन हित की बात।।

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु ।
माम् एवैष्यसि सत्यं ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।६५।

65. मन से मेरा भक्त बन, मुझको करो प्रणाम।
सत्य प्रतिज्ञा कर कहूँ, पा लोगे मम धाम।।

सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।१८.६६।

66. सब धर्मों को त्यागकर, शरण गहो मम पार्थ।
मोक्ष मिले, निष्पाप हो, तजो शोक निःस्वार्थ।।

इदं ते नातपस्काय, नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं, न च मां योऽभ्यसूयति ।६७।

67. दोष दृष्टि, जो तप रहित, सुनत उठे मन शूल।
गीता रूप रहस्य यह, उन्हें न कहना भूल ।।

य इमं परमं गुह्यं, मद्भक्तेष्व् अभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा, माम् एवैष्यत्य् असंशयः ।६८।

68. मुझसे करते प्रेम जो, मेरे हों जो भक्त।
उनसे कहे रहस्य तो, हो मुझसे अविभक्त।।

न च तस्मान् मनुष्येषु, कश्चिन् मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्माद् , अन्यः प्रियतरो भुवि ।६९।

69. उससे प्रिय मेरा नहीं, जग में होगा और।
नहिं भविष्य में हो कभी, भक्त परमप्रिय मोर।।

अध्येष्यते च य इमं, धर्म्यं संवादम् आवयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहम् , इष्टः स्याम् इति मे मतिः ।७०।

70. अगर पढ़े अरु सुने जो, धर्ममयी संवाद।
वह भी मेरा भक्त है, उसे न हो अवसाद।।

श्रद्धावान् अनसूयश्च, शृणुयाद् अपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल् लोकान् , प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम्

71. दोष दृष्टि से रहित जो, सुनते श्रद्धावान।
पुण्य कर्म फल प्राप्त कर, पाते लोक महान।।

कच्चिद् एतच् छ्रुतं पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिद् अज्ञानसंमोहः, प्रनष्टस् ते धनंजय ।१८.७२।

72. तुमने क्या एकाग्रचित, सुना शास्त्र यह पार्थ।
मिटा मोह अज्ञान तव, जीवन हुआ यथार्थ।।

अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः स्मृतिर् लब्धा, त्वत्प्रसादान् मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः, करिष्ये वचनं तव ।१८.७३।

73. हे अच्युत तव कृपा से, नष्ट हुआ मम मोह।
स्मृति पायी भ्रम रहित, करूं तुम्हें जो सोह।।

संजय उवाच
इत्य् अहं वासुदेवस्य, पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादम् इमम् अश्रौषम् , अद्भुतं रोमहर्षणम् ।१८.७४।

74. वासुदेव अरु पार्थ का, यह रहस्य सम्वाद।
अदुभुत्, रोमांचक परम, मिश्रित हर्ष विषाद।।

व्यासप्रसादाच् छ्रुतवान् , एतद् गुह्यम् अहं परम् ।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात् , साक्षात् कथयतः स्वयम्

75. व्यास कृपा से मैं सुना, गोपनीय यह ज्ञान।
स्वयं कृष्ण ने जो कहा, युद्ध बीच मैदान।।

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य, संवादम् इमम् अद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं, हृष्यामि च मुहुर् मुहुः ।१८.७६।

76. राजन हर्षित हो रहा, बार बार कर ध्यान।
केशव अर्जुन के वचन, अदभुत पुण्य महान।।

तच् च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूपम् अत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् , हृष्यामि च पुनः पुनः ।७७।

77. परम विलक्षण रूप हरि, अपने उर में धार।
पुलकित होत किशोर मन, हर्षित बारम्बार।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर् विजयो भूतिर् , ध्रुवा नीतिर् मतिर् मम ।७८।

78. योगेश्वर हैं कृष्ण जहॅ, और धनुर्धर पार्थ।
वहीं नीति अरु विजय श्री, यह मत मोर यथार्थ।।

"गुरु, पितु, मां, स्वामी, सखा, शिष्य, विश्व सम्राट।
हो वराट या शशि, सुधा, सबमें लखो विराट।।

ज्ञान पंथ अति कठिन है, सरल एक ही पंथ।
मोड़ त्रिगुण हरि शरण में, हो किशोर निर्ग्रंथ।।

मोक्ष और संन्यासमय, अष्टादश अध्याय।
ऊॅ नमः परमात्मने, ऊॅ नमः कृष्णाय।।"

"सत्तर जय या सात सौ,भारत के श्लोक।
योगशास्त्र गीता पढ़ें, बनें जुगल दोउ लोक।18।"